॥ श्रीहरिः ॥

2066

श्रीनाभादासजीकृत

श्रीभक्तमाल

[श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीका एवं विस्तृत हिन्दी व्याख्यासहित]

गीताप्रेस, गोरखपुर

2066

॥ श्रीहरि: ॥

श्रीनाभादासजीकृत

श्रीभक्तमाल

[श्रीप्रियादासजीकृत भक्तिरसबोधिनी टीका
एवं विस्तृत हिन्दी व्याख्यासहित]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

शेषावति नृप के पुरोहित की बेटी जानौ, बास हो खँडेला करमैती सो बखानियै।
बस्यो उर श्याम अभिराम कोटि काम हूँ ते, भूले धाम काम सेवा मानसी पिछानियै॥
बीत जात जाम तन बाम अनुकूल भयौ, फूलि फूलि अंग गति मति छबि सानियै।
आयौ पति गौनो लैन, भायौ पितु मातु हिये, लिये चित चाव पट आभरन आनियै॥ ५८४॥
पर्‌यौ सोच भारी कहा कीजिये बिचारी, हाड़ चाम सों सँवारी देह रति के न काम की।
तातें देवौ त्यागि मन सोवै जनि, जाग अरे, मिटै उर दाग एक सांची प्रीति स्याम की॥
लाज कौन काज जौपै चाहै ब्रजराज सुत, बड़ोई अकाज, जोपै करै सुधि धाम की।
जानी भोर गौनो होत, सानी अनुराग रंग, संग एक वही, चली भीजी मति बाम की॥ ५८५॥
आधी निसि निकसी यों बसी हिये मूरति सो, पूरति सनेह तन सुधि बिसराई है।
भोर भये सोर पर्‌यौ पर्‌यौ पितु मातु सोच, कर्‌यौ लै जतन ठौर ठौर ढूँढ़ि आई है॥
चारों ओर दौरे नर, आये ढिग ढुरि जानि, ऊँट के करंक मध्य देह जा दुराई है।
जग दुरगन्ध कोऊ ऐसी बुरी लागी, जामें वह दुरगन्ध सो सुगन्ध सी सुहाई है॥ ५८६॥
बीते दिन तीन वा करंक ही में संक नहीं, बंक प्रीति रीति यह कैसें करि गाइयै।
आयौ कोऊ संग ताही संग गंग तीर आई, तहाँ सो अन्हाई दै भूषन बन आइयै॥
ढूँढ़त परसराम पिता मधुपुरी आये, पते लै बताये जाय माथुर मिलाइयै।
सघन बिपिन ब्रह्मकुण्ड पर, बर एक, चढ़ि करि, देखी, भूमि अँसुवा भिजाइयै॥ ५८७॥

श्रीकरमैतीजीके पिता वटवृक्षसे नीचे उतरकर आये। उन्होंने अपनी पुत्रीकी वेश-भूषा और श्रीकृष्ण-प्रेमको देखा और उसके चरणोंमें लिपट गये। पुनः धैर्य धारणकर बोले—'बेटी! इस प्रकार गौनेके अवसरपर घरसे छिपकर तुम्हारे भाग आनेसे संसारमें मेरी नाक कट गयी। मैं मुख दिखानेके योग्य नहीं रह गया। अब तुम चलकर घरमें ही रहो, जिससे संसारमें हमारी हँसी और निन्दा जो हुई है, वह मिट जाय। तुम ससुराल मत जाना, घरमें रहकर भगवान्‌की सेवामें मन लगाना। यहाँ इस घोर वनमें कोई बाघ-सिंह तुम्हारे शरीरको नष्ट कर देगा। मुझे इस बातका बड़ा डर लग रहा है। अतः अपने घर चलो और मृतप्राय मुझे तथा अपनी माताको जीवनदान दो।' यह सुनकर श्रीकरमैतीबाईने कहा—'पिताजी! आपने सत्य कहा। बिना भगवद्भक्तिके शरीर मृतक ही समझिये। यदि आप जीवन चाहते हैं तो भगवान्‌में भक्ति और उनकी कीर्तिका गान कीजिये।'

श्रीकरमैतीजी पुनः पिताजीसे बोलीं कि आपने जो यह कहा कि 'मेरी नाक कट गयी।' नाक कटे तो तब जब हो, जब है ही नहीं तो कटेगी क्या? नाक अर्थात् प्रतिष्ठा तो केवल भगवद्-भक्ति है, आप अपने मनमें विचारिये—पचास वर्षोंसे आप विषयोंमें आसक्त हैं, फिर भी आपको उनसे वैराग्य नहीं हुआ। भोगे हुए विषयोंको ही बार-बार भोग रहे हैं। मैंने सब भोगोंको देखते हुए भी उनको नहीं देखा। मैंने तो केवल एक श्यामसुन्दरको देखा है, अतः अब संसारकी ओर मेरी दृष्टि नहीं जा सकती है। आप भी सब कामोंको छोड़कर भगवान्‌की सेवामें ही तन-मन और धनको लगाइये। श्रीकरमैतीजीके इस उपदेशको सुनकर पिता श्रीपरशुरामजीका अज्ञान उसी समय नष्ट हो गया। जब वे घरको चलने लगे, तब श्रीकरमैतीजीने श्रीयमुनाजीसे प्राप्त उन्हें एक कृष्णभगवान्‌की मूर्ति दी, उसे लेकर वे घरको चले आये। श्रीकरमैतीजीने जो कुछ कहा, वह उनके हृदयमें आ गया।

श्रीपरशुरामजी रातको घरमें आये। बड़े चावके साथ उन्होंने घरमें भगवत्सेवाको पधराया और मन लगाकर सेवा करने लगे। अब उन्हें भगवत्कैंकर्य ही अच्छा लगता था। कहीं आना-जाना या लोगोंसे मिलना-जुलना अच्छा नहीं लगता था। कुछ दिनोंके बाद राजाको अपने पुरोहित श्रीपरशुरामजीकी याद आयी, तब उसने लोगोंसे पूछा—'पण्डितजी कहाँ हैं?' यह सुनकर किसीने राजाको बताया कि अब वे अपने घरमें

ही भगवत्सेवा और सत्संगमें मग्न रहते हैं। ऐसा सुनकर राजाको श्रीपरशुरामजीके प्रति अत्यन्त अनुराग हुआ। तब उसने एक सेवकको भेजकर उनका समाचार मँगवाया। श्रीपरशुरामजीने राजसेवकसे कहा—तुम जाकर राजासे कह दो कि—हे राजन्! मैं (आपका पुरोहित) यहाँ अपने घरपर रहता हुआ ही आपको आशीर्वाद देता हूँ, भगवत्-चरणोंमें तुम्हारा प्रेम बढ़े। सानन्द सकुशल रहो। परंतु अब दरबारमें नहीं आ सकता। यह सुनकर राजाके मनमें श्रीपरशुरामजीके प्रति बड़ा प्रेम हुआ और उनके दर्शनोंकी इच्छा हुई, तब राजा आया।

राजाने श्रीपरशुरामजीका अद्भुत प्रेम देखा और उनकी सेवाकी रीति देखी। राजाने श्रीकरमैतीबाईजीका समाचार पूछा। तब श्रीपरशुरामजीने रोते-रोते सब बात कही कि 'वे तो भगवान् श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके प्रेमरंगमें रँग गयी हैं।' राजाके नेत्रोंसे आँसू गिरने लगे, उसने कहा—'मुझे श्रीवृन्दावन जाकर दर्शन करनेकी आज्ञा दीजिये।' श्रीपरशुरामजीने मना किया, तब राजाने पुनः कहा—मुझे जाने दीजिये, मैं जाकर समझा-बुझाकर यहाँ ले आऊँगा तो मेरा बड़ा सौभाग्य होगा, अन्यथा दर्शन कर आऊँगा। मेरे मनमें दर्शनकी बड़ी भारी इच्छा हो रही है। ऐसा कहकर राजा श्रीवृन्दावनको आया और उसने यहाँ आकर देखा कि श्रीकरमैतीजी यमुनाजीके तटपर खड़ी हैं, उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह रही है। उनका रूप कुछ और ही प्रकारका हो गया है। प्रेमके उमंगमें डूब रही हैं। अब राजा कहें तो क्या कहें? राजाने प्रार्थना की कि 'कुछ सेवा करनेकी आज्ञा दो।' श्रीकरमैतीजीने कहा—'तुम्हारी किसी भी प्रकारकी सेवाकी आवश्यकता नहीं है।' इनके बार-बार बहुत मना करनेपर भी राजाने अपनी इच्छासे ब्रह्मकुण्डके निकट ही एक कुटी बनवा दी और उसके बाद अपने देशको लौट आये। श्रीकरमैतीजीके दिव्य भगवत्प्रेम एवं उपदेशको स्मरण करके राजा भी प्रेमरंगमें रँग गया और भगवद्भजन करने लगा।

श्रीप्रियादासजीने श्रीकरमैतीजीके इस दिव्य कृष्ण-प्रेमका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

उतरि कै आय रोय पाँय लपटाय गयौ, 'कटी मेरी नाक जग मुख न दिखाइयै।
चलौ गृह बास करो लोक उपहास मिटै, सासु घर जावौ मत सेवा चित लाइयै॥
कोऊ सिंह व्याघ्र अजू बपु कों बिनास करै, त्रास मेरे होत, फिरि मृतक जिवाइयै'।
बोली कही सांच बिन भक्ति तन ऐसो जानौ जोपै जियौ चाहौ, करो प्रीति जस गाइयै॥ ५८८॥

कही तुम कटी नाक, कटै जो पै होय कहूँ, नाक एक भक्ति नाक लोक में न पाइयै।
बरस पचास लगि बिषै ही में बास कियौ, तऊ न उदास भये चबेकों चबाइयै॥
देखे सब भोग मैं न देखे, एक देखे श्याम, ताते तजि काम तन सेवा में लगाइयै।
रात तें ज्यौं प्रात होत, ऐसे तम जात भयो, दयौ लै सरूप प्रभु, गयौ, हिये आइयै॥ ५८९॥

आये निसि घर, हरिसेवा पधराय, चाय मन को लगाय, वही टहल सुहाई है।
कहूँ जात आवत न भावत मिलाप कहूँ, आप नृप पूछे द्विज कहाँ? सुधि आई है॥
बोल्यौ कोऊ जन धाम स्याम संग पागे सुनि, अति अनुरागे, बेगि खबर मँगाई है।
कहौ तुम जाय 'ईश इहांई असीस करौ', कही भूप आयौ हिये चाह उपजाई है॥ ५९०॥

देखी नृप प्रीति रीति, पूछी, सब बात कही, नैन अश्रुपात, 'वह रँगी श्याम रंग मैं।
बरजत आयौ भूप 'जायके लिवाय ल्याऊँ पाऊँ जोपै भाग मेरे' बढ़ी चाह अंग मैं॥
कालिन्दी के तीर ठाढ़ी नीर दृग, भूप लखी, रूप कछु औरै कहा कहैं वे उमंग मैं।
कियौ मने लाख बेर ऐपै अभिलाष राजा कीनी कुटी, आए देस, भीजे सो प्रसंग मैं॥ ५९१॥

श्रीकरमैतीजीपर प्रभुकृपा

श्रीकरमैतीजीकी भगवान् श्रीकृष्णमें अनन्य निष्ठा थी। एक बार वे भजन-ध्यानमें इस प्रकार मग्न रहीं कि उन्होंने अठारह दिनतक कुछ भी नहीं खाया-पीया। इनके शरीरको अत्यन्त शिथिल देखकर स्वयं

श्यामसुन्दर एक सन्तका रूप धारण करके आये और बोले—बाई! लो, यह प्रसाद पा लो। इन्होंने हाथ-जोड़कर कहा—महाराज! कृपा करके ऐसा दिव्य-प्रसाद दीजिये, जिससे फिर कभी भूख-प्यास भगवत्स्मरणमें बाधा न करे। सन्तरूपधारी भगवान्ने कहा—ऐसा ही होगा। प्रसाद पाकर देखो। एक ग्रासको लेते ही श्रीकरमैतीजीके मनमें बड़ा आह्लाद हुआ, वे प्रभुके चरणोंमें पड़ गयीं। प्रभुने दर्शन देकर कृतार्थ किया। तबसे इन्हें भूख-प्यास कभी बाधा न करती और प्रभुकी झाँकी होती ही रहती। इस प्रकार तपस्विनी करमैती देवीने प्रभु-कृपासे महान् तप करके प्रेममय वृन्दावनधामको प्राप्त किया।

श्रीखड्गसेनजी कायस्थ

गोपी ग्वाल पितु मातु नाम निरनै कियो भारी।
दान केलि दीपक्क प्रचुर अति बुद्धि उचारी॥
सखा सखी गोपाल काल लीला में बितयो।
कायथ कुल उद्धार भक्ति दृढ़ अनत न चितयो॥
गौतमी तंत्र उर ध्यान धरि तन त्यागयो मंडल सरद।
गोबिंदचंद गुन ग्रथन को खडगसेन बानी बिसद॥ १६१॥

श्रीराधागोविन्दचन्द्रके गुणगणोंको वर्णन करनेमें श्रीखड्गसेनजीकी वाणी अति उज्ज्वल थी। आपने व्रजकी गोपियों और ग्वालोंके पिता-माताओंके नामोंका ठीक-ठीक निर्णय किया। इसके अतिरिक्त 'दानकेलिदीपक' आदि काव्योंका निर्माण किया, जिनसे यह मालूम होता है कि आपको साहित्यका प्रचुर ज्ञान था और आपकी बुद्धि प्रखर थी। श्रीराधागोपालजी, उनकी सखियाँ और उनके सखाओंकी लीलाओंको लिखने और गानेमें ही आपने अपना समय व्यतीत किया। कायस्थ वंशमें जन्म लेकर आपने उसका उद्धार किया। आपके हृदयमें भक्ति दृढ़ थी, अतः अन्यत्र (सांसारिक विषयोंकी ओर) नहीं देखा। गौतमीतन्त्रमें वर्णित विधिसे शरत्पूर्णिमाके महारासका हृदयमें ध्यान धारणकर आपने शरीरका परित्याग किया॥ १६१॥

श्रीखड्गसेनजी कायस्थके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

ग्वालियर-निवासी खड्गसेनका उल्लेख 'भक्तमाल' और 'रसिक-अनन्यमाल' में मिलता है, जिनके आधारपर कुछ विद्वान् दोनों खड्गसेनको भिन्न मानते हैं, जबकि दोनोंमें कायस्थकुलोत्पन्न और भक्त होनेकी समानता है। वस्तुतः उक्त दोनों ग्रन्थोंमें वर्णित खड्गसेन एक ही हैं।

मिश्रबन्धुओंने इनका जन्म सं० १६६० (१६०३ ई०) एवं रचनाकाल सं० १६८५ (१६२८ ई०) माना है, पर किसी प्रामाणिक साक्ष्यके बिना यह अनुमानमात्र है। इनकी 'दानलीला' का रचनाकाल १६२८ ई० है। अतः यही इनका उपस्थिति-काल माना जा सकता है। कहते हैं, खड्गसेनजीने नीचे लिखे पदको गाते-गाते अपना शरीर प्रभुपर निछावर किया था—

द्वै गोपिन बिच-बिच नँदलाला।
करत नृत्य संगीत भेद गति गुंजनि गरब मराला॥
फहरत अंचल चंचल कुंडल, थहरत है उरमाला।
मध्य रली मुरली मोहन धुनि, गान बितान छयौ तिहि काला॥
चलिय झमकि झंकार बलय मिलि, नूपुर किंकिनि जाला।
देव बिमाननि कौतुक मोहे, लखि भौ मदन, बिहाला।
खड्गसेन प्रभु रैन सरद की, बाढ़ी रंग रसाला॥

इससे खड्गसेनके भक्तिमय जीवनके साथ ही उनके देहावसान-विषयक कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती हैं। छप्पयकी पंक्ति **'तनु त्यागो मंडल सरद'** से रासमण्डलके आनन्दमें मग्न होकर इनके गोलोकवासी होनेका पता चलता है। नागरीदासजीकी 'पदप्रसंगमाला' से इस तथ्यका समर्थन होता है— ***'एक समै सरदकी पूरनमासी कौं रासमंडल चौंतरापर रासमें एक पद बनावत हुते, सो जब भोग दै चुके, तब अपनेई पद पै रीझ प्रेम विवस ह्वै देह छोड़ दई।'***

भक्तवर खड्गसेनजी ग्वालियरमें निवास करते थे। आप रासके समाज अर्थात् रासलीलाके आयोजन यथासमय करते ही रहते थे। एक बार शरत्पूर्णिमाकी रात्रिमें महारास हो रहा था। उस दिन उनके ऊपर प्रेमका बड़ा भारी गाढ़ा रंग चढ़ गया। वह भावावेश बढ़ता ही गया, आँखोंमें रासविहारिणी-बिहारीजीकी सुन्दर छवि निरन्तर समाती ही चली गयी। **'तत्-थेई'** कहकर नृत्य और गान करती हुई प्रिया-प्रियतमकी सुन्दर जोड़ीको आपने अपलक नेत्रोंसे भलीभाँति निहारा तो उसी समय मानसिक भावनासे नश्वर शरीरको त्यागकर युगलकिशोरकी नित्यलीलामें पहुँच गये। इस प्रकार श्रीखड्गसेनजीने अपार दिव्य-सुखका अनुभवकर तथा लीलाबिहारीकी छविपर रीझकर अपने शरीरको न्यौछावर कर दिया। प्रेम ही सत्य है, यह और उसके निभानेकी रीतिको आपने प्रत्यक्ष दिखला दिया। रास-रसके प्रेमी-भावुकोंने जब आपका प्रकट-प्रेम देखा तो उनके मन भी रास-रसमें सराबोर हो गये। इस प्रकार प्रेम करना और शरीर त्यागना बहुत प्रिय लगा।

श्रीप्रियादासजीने श्रीखड्गसेनजीके इस प्रभुप्रेमका अपने कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

ग्वालियर बास, सदा रास कौ समाज करें, सरद उजारी अति रंग चढ़्यौ भारी है।
भाव की बढ़नि दृग रूप की चढ़नि ततथेई की रढ़नि जोरी सुन्दर निहारी है॥
खेलन में जाय मिले त्यागि तन भावना सों झेलत अपार सुख, रीझि देह वारी है।
प्रेम की सचाई ताकी रीति लै दिखाई भई भावुकनि सरसाई, बात लागी प्यारी है॥ ५९२॥

साम्प्रदायिक स्रोतोंके अनुसार ये भानुगढ़के राजा माधोसिंहके दीवान थे। एक दिन इनके यहाँ वृन्दावनके एक रसिक सन्त पधारे। उन्होंने इनको श्रीहित धर्मका उपदेश दिया। रसिक सन्तसे इष्ट और धामका रहस्य सुनकर इन्होंने श्रीराधावल्लभलालके चरणोंमें अपनेको अर्पित कर दिया और वृन्दावन आकर श्रीहिताचार्यसे दीक्षा ले ली। श्रीश्रीजीकी शरण ग्रहण करते ही गृहस्थी एवं जगत्के प्रति इनका दृष्टिकोण एकदम बदल गया। श्रीश्यामा-श्यामका अनुपम रूप-माधुर्य इनके नेत्रोंमें झलक उठा एवं दसों दिशाएँ आनन्दसे पूरित हो गईं। ये अधिक-से-अधिक समय नामवाणीके गानमें लगाने लगे। इनका यश चारों ओर फैल गया और दूर-दूरसे साधु-सन्त आकर इनका सत्संग प्राप्त करने लगे। उनकी सेवा-शुश्रूषामें ये मुक्त हस्तसे व्यय करने लगे।

इनको अन्धाधुन्ध खर्च करता देखकर बहिर्मुख लोगोंमें कानाफूसी होने लगी और कुछ दिन बाद उन लोगोंने राजाके कान भरना प्रारम्भ कर दिया। उनका कहना था कि दीवानजीको वेतन तो सीमित ही मिलता है, किंतु व्यय असीमित करते हैं। ऐसी स्थितिमें राजकोषके अतिरिक्त ये अन्यत्र कहाँसे धन पा सकते हैं? राजा माधोसिंहकी समझमें यह बात आ गयी कि दीवानजी मेरा ही धन खर्च कर रहे हैं। उन्होंने तत्काल इनको बुलवाया और अत्यन्त कुपित होकर इनसे कहा, 'तूने मेरी चोरी की है। या तो तू एक लाख रुपया दण्डमें दे अथवा मैं तुझे फाँसीपर लटकवा दूँगा।' खड्गसेनजीने राजाको समझानेकी बहुत चेष्टा की। इन्होंने कहा—'आप राजकोषकी जाँच करा लीजिये और यदि कोई गड़बड़ी निकले तो मुझे दण्ड दीजिये। अपराधके बिना दण्ड देना उचित नहीं है।'

किंतु राजाने इनकी एक नहीं सुनी और कारागृहमें डाल दिया। इनका भोजन-पानी बन्द कर दिया गया। कहते हैं कि रातको राजा जैसे ही सोया, उसको यमके दूतोंने आकर घेर लिया और अनेक प्रकारसे डराना आरम्भ कर दिया। उसके हाथ-पैरोंमें हथकड़ी-बेड़ी डाल दी। राजा कष्टसे घबड़ाकर रोने लगा।

यमदूतोंने उससे कहा—'तूने एक निरपराध हरिभक्तको बन्धनशालामें डाल दिया है, तू उनको शीघ्र मुक्त कर दे, अन्यथा तेरी खैर नहीं है।'

राजा मृतकतुल्य मूर्च्छित पड़ा था। यह देखकर उसके उन नौकर-चाकरोंको भी बहुत दुःख हुआ, जिन्होंने खड्गसेनकी शिकायत की थी। उन लोगोंने एक होकर विचार किया कि खड्गसेनके प्रति किये गये अपराधसे ही राजाको यह महान् कष्ट मिल रहा है। अतः उनको ही राजाके पास ले चलना चाहिये। वे तीसरे दिन खड्गसेनको लेकर राजाके पास पहुँचे। उनको देखते ही यमदूत राजाके पाससे हट गये और राजा स्वस्थ हो गया। खड्गसेनके इस प्रभावको देखकर राजा लज्जित हो गया और उसने उठकर उनके चरण पकड़ लिये। इस घटनाके बादसे राजा उनका बहुत आदर करने लगा। कोई राज्य-कार्य आनेपर वह स्वयं इनके घर चला जाता था, इनको अपने यहाँ नहीं बुलाता था। वह इनका भगवान्‌के समान आदर करने लगा। कुछ दिनों बाद उसने इनसे दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट की। खड्गसेनने उसको श्रीवृन्दावन ले जाकर दीक्षा दिलवा दी। खड्गसेनजीके सत्संगसे राजाके जीवनमें आमूल परिवर्तन हो गया। चरित्रकार श्रीभगवत मुदितने सत्संगकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा है कि मनुष्यको एकमात्र सत्संग ही सुधार सकता है। सत्संगसे आनन्दकी प्राप्ति होती है। सत्संग सम्पूर्ण मंगलोंका मूल है और सत्संगमें ही भगवान्‌का सत्यस्वरूप प्रकाशित होता है। सत्संगसे विश्वासकी दृढ़ता होती है और आध्यात्मिक सुखोंका प्रकाश होता है। सत्संगमें ही रास-विलास है और सत्संगमें ही श्रीवृन्दावन-वास है।

खड्गसेनने अपना शेष जीवन सत्संगमें ही व्यतीत किया। चौथी अवस्था आनेपर इनकी बुद्धि एवं शारीरिक बल सवाये हो गये और ये श्रीराधावल्लभलालकी रसात्मिका सेवामें कालयापन करने लगे। इनका महाप्रयाण आराध्यकी भावसेवा करते ही हुआ।

श्रीगंगग्वालजी

स्यामा जू की सखी नाम आगम बिधि पायो।
ग्वाल गाय ब्रजगाँव पृथक नीकें करि गायो॥
कृष्नकेलि सुख सिंधु अघट उर अंतर धरई।
ता रस में नित मगन असद आलाप न करई॥
ब्रजबास आस ब्रजनाथ गुरु भक्त चरन रज अननि गति।
सखा स्याम मन भावतो गंग ग्वाल गंभीरमति॥ १६२॥

श्रीगंगग्वालजी भगवान् श्यामसुन्दरके प्रिय सखा थे, आपकी बुद्धि अति गम्भीर थी। आपने पुराण एवं धर्मग्रन्थोंसे ढूँढ़कर श्रीराधिकाजीकी सखियोंके नाम, ग्वालबालोंके नाम, गायोंके नाम एवं व्रजके गाँवोंके नाम भलीभाँति अलग-अलग वर्णन किये। श्रीराधाकृष्णके विहारका जो अपार सुख-समुद्र आपने अपने हृदयमें धारण किया, सदा उसी रसमें डूबे रहते थे। व्यर्थ एवं असत्य वार्तालाप कभी नहीं करते थे। आप व्रजभूमिमें निवास करते थे एवं मनमें व्रजनाथ गुरु और व्रजनाथ श्रीकृष्णकी कृपाकी आशा रखते थे। गुरुदेव और हरिभक्तोंकी चरणरजमें इनका अनन्य भाव था, उसीसे अपनी सद्गति चाहते थे॥ १६२॥

श्रीगंगग्वालजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीगंगग्वालजी गूजर गौड़ा ब्राह्मण थे। सन्त-सेवामें आपका बड़ा-भारी अनुराग था। उनकी सेवा और सत्संगमें ही अधिक मन लगाते थे। इनका यह स्वभाव बड़े भाईको अच्छा नहीं लगता था। सन्त-सेवामें अन्न-धनका व्यय उन्हें असह्य था। एक बार कई सन्त पधारे, बड़े भाईकी आँख बचाकर आप घरसे सीधा-सामान चुरा ले गये और सन्तोंको भोजन कराया। यह जानकर बड़े भाईने बड़ा क्रोध किया। तुम्हें जानसे

मार डालूँगा। ऐसा कहकर वह मारनेके लिये दौड़ा—ये बड़ी जोरसे भागे और एक कुएँमें कूद पड़े। सन्त-सेवासे सन्तुष्ट प्रभुने अधरमें ही इन्हें रोक लिया। इनके शरीरमें बिलकुल चोट नहीं आयी। भगवान्ने इन्हें वहीं दर्शन दिया और कहा कि मैं तुम्हारी सन्त-सेवा-भावनामें सन्तुष्ट हूँ, जो चाहो सो वर माँग लो। आपने कहा—प्रभो! आपकी ब्रजलीला और ब्रजधामका हमें सदा साक्षात्कार रहे। भगवान्ने एवमस्तु कहकर कहा कि तुम तो मेरे पुराने सखा हो, मेरी लीलाके परिकर हो। इस प्रकार श्रीगंगग्वालजी कुएँमें भगवद्दर्शन और संभाषणका सुख ले रहे थे। इनके कुएँमें कूद पड़नेपर बड़े भाईका क्रोध शान्त हो गया। लोगोंको बुलाकर इन्हें कुएँमें ढूँढ़ने लगा। तीन प्रहरतक सभी लोग परेशान रहे, पर आप किसीको नहीं मिले; क्योंकि आप तो भगवान्के निकट थे। भगवान्ने इन्हें सब प्रकारसे सन्तुष्ट करके कुएँसे उछाल दिया तो आप झट बाहर आ गये। आपके शरीरमें अपार तेज, मनमें परम सन्तोष था। बड़े भाईके प्रति इन्होंने स्नेह और कृतज्ञता व्यक्त की। इनके इस चमत्कारसे घरके भाई आदि सभी भक्त हो गये और सन्त-सेवा करने लगे। आप निर्द्वन्द्व होकर ब्रज-महिमा और लीलाओंका गान करने लगे तथा पूर्वदृष्ट रूपके ध्यानमें सदा मग्न रहने लगे। सर्वेश्वर भक्तमालमें आपका यह कवित्त लिखा है—

कर्क पाप पुंजन की पल में पलायमान, षर्क खिन्नता की षंडे जाके नेक छूजिये।
नर्क के निकेत नोकदार ते निकासि नाषै, पुर्षन की पंगति कितेकौ कहूँ हूजिये॥
सर्क जाय संकट समूह ग्वाल कवि भाषै, गर्क करै मोद मैन और विधि दूजिये।
तर्क के वितर्क के औ फर्क के मिटैया ऐसे, स्वामी श्रीनिम्बार्क जू के पद्म पद पूजिये॥

एक बार दिल्लीका बादशाह श्रीवृन्दावन आया। उसने इच्छा की कि कोई हमें साराँग राग सुनाये। लोगोंने कहा—वर्तमान समयमें साराँग रागके सर्वश्रेष्ठ गायक श्रीगंगग्वालजी हैं। बादशाहकी आज्ञासे सिपाही लोग बुलाने गये, परंतु आपने अस्वीकार कर दिया, तब वे जबरदस्ती आपको पकड़कर लाये। उस समय आपके साथ बल्लभ नामके एक गायक और थे। दोनोंने स्वर मिलाकर साराँग रागका आलाप किया तो उस समय रागका रंग सर्वत्र व्याप्त हो गया। बादशाहके समेत सभी लोग बहुत ही प्रसन्न हुए। लोगोंके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। रीझा हुआ बादशाह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और उसने प्रार्थना की कि आप हमारे साथ दिल्ली चलिये, परंतु श्रीगंगग्वालने स्वीकार नहीं किया और कहा कि 'ब्रजभूमि ही हमारा जीवन है। अत: मैं अन्यत्र नहीं जा सकता।' अन्तमें बादशाह आपको नजरकैद करके अपने साथ दिल्ली लाया। वहाँ आनेपर भक्तवर श्रीहरीदासजी तूँवरने आपको छुड़वा दिया। तब आप पुन: ब्रजभूमिमें आ गये। मरे हुएको जैसे प्राणोंका लाभ हुआ हो, ऐसी प्रसन्नता आपको हुई।

श्रीप्रियादासजीने आपकी इस व्रजनिष्ठाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

पृथ्वीपति आयौ वृन्दावन, मन चाह भई साराँग सुनावै कोऊ जोराबरी ल्याये हैं।
बल्लभहूँ संग सुर भरत ही छायौ रंग, अति ही रिझायौ, दृग अँसुवा बहाये हैं॥
ठाढ़ौ कर जोरि बिनै करी, पै न धरी हियै, जियै, ब्रजभूमि ही, सो बचन सुनाये हैं।
कैद करि साथ लिये दिल्ली ते छुटाय दिये 'हरीदास तूँवर' नै आये प्रान पाये हैं॥ ५९३॥

श्रीदिवाकर सोतीजी

परम भक्ति परताप धर्मध्वज नेजा धारी।
सीतापति को सुजस बदन सोभित अति भारी॥
जानकि जीवन चरन सरन थाती थिर पाई।
नरहरि गुरु परसाद पूत पोतें चलि आई॥

राम उपासक छाप दृढ़ और न कछु उर आनियो।
'सोति' स्लाघ्य संतनि सभा, दुतिय दिवाकर जानियो॥ १६३॥

श्रीदिवाकर सोतीजी सन्तोंकी सभामें प्रशंसनीय, ज्ञान तथा भक्तिके प्रकाशक दूसरे सूर्यके समान थे। श्रीभगवद्भक्तिके श्रेष्ठ प्रतापसे धर्मरूपी ध्वजाके दण्डको आपने दृढ़तासे धारण किया। सीतापति श्रीरामचन्द्रजीके पवित्र सुयशका आप सदा गान करते रहते थे। श्रीजानकीजीवन राघवेन्द्रके चरणोंकी शरणागति आपकी स्थिर पूँजी थी, आपने उसका व्यय नहीं किया। आपके गुरुदेव श्रीनरहरिदासजी थे, उनकी कृपासे आपके पुत्र-पौत्रोंतकमें भक्ति सुदृढ़ बनी रही। 'राम-उपासक' यह आपकी पुष्ट छाप थी। आपने श्रीरामोपासनाके अतिरिक्त और कुछ भी अपने हृदयमें नहीं आने दिया॥ १६३॥

श्रीसोतीजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रोत्रिय जातिके ब्राह्मण श्रीदिवाकर सोतीजी रामजीके अनुरागी तथा राम-मन्त्रके उपासक थे। सन्तोंकी सेवामें प्रेम था। सन्तजन आपका बड़ा आदर करते थे। उनका किशोर-अवस्थावाला एक पुत्र था। उसके शीतला निकल आयी। लड़केकी माताको बड़ा दुःख हुआ। पुत्रको मरणासन्न देखकर उसने इनसे कहा कि शीतलादेवीकी पूजा करो और जात देनेकी मनौती मान लो, जिससे लड़केके प्राण बच जायँ। तब आपने स्त्रीको समझाते हुए कहा—

अरी सुनि नारी तू गँवारी न विचारी भक्ति, ताते व्यभिचारी बात उचारी अताइयै।
एक प्राणनाथ रघुनाथ बिना आन देव, पूज्यौ न सकाम जातें स्वधरम घटाइयै॥
राम की उपास में न आन की उपास मिलै, जैसे दूध काँजी दोऊ मिले स्वाद हानियै।
जैसे आन घास पास खेती धान नास जाय, जैसे वहु पति नीकी कौन नारि ठानियै॥
ऐसे ही समझि लेहु राम कौ उपासो जैसे, हाथी पै चढ़्यौ सो कैसे खर मन मानियै।
ज्यावौ तौहू राम भलै मारै तौहू राम भलै, पै न चलैं आन पास एही दृढ़ जानियै॥
ऐसे समझाई नारी आन की उपास टारी, धारी प्यारी राम सेवा देवा सब जामहीं।
राम के भरोसे सुत जियौ सुख लियौ कियौ, उच्छव बड़ोई सन्तवृन्द जेमे तामहीं॥

नाना प्रकारके खान-पान और वस्त्रदानके द्वारा सन्तोंकी सेवा करते देखकर श्रीसीतारामजी इनके ऊपर रीझ गये। एक बार इनके पास खर्चेके लिये धनकी कमी आ गयी। यह देखकर जगदम्बा श्रीजानकीजी इनके घरपर आयीं। उन्होंने घूँघटमें अपने श्रीमुखको छिपा रखा था। भक्त दिवाकरजीके हाथमें चाँदीके बीस रुपये देकर कहा—'मेरे पतिदेवने ये रुपये भेजे हैं, इनसे आप सन्त-सेवा कीजिये। ये पूजन कर रहे थे, इन्होंने रुपये लेकर सिंहासनपर रख दिये और पूछा कि आप कहाँ रहती हैं, अपना परिचय दीजिये। जगन्माताने हँसकर कहा—आपने मुझे नहीं पहचाना, मैं आपके समीप ही रहती हूँ। आप मनमें ध्यान करके जान लीजियेगा। ऐसा कहकर श्रीजानकीजी अन्तर्धान हो गयीं। आपने मन्दिरसे बाहर निकलकर देखा तो उनका कहीं भी पता न चला। फिर लौटकर आपने मन्दिरमें देखा तो उन रुपयोंकी विशाल राशि दिखलायी पड़ी। तब आप समझ गये कि जानकीजीने कृपा की है। उस दिनसे आपके घरमें फिर कभी सम्पत्तिकी कमी नहीं आयी। आपने बड़े समारोहसे महोत्सव किया। नित्य सन्तोंको भोजन कराना आरम्भ कर दिया।

एक बार आपके पुत्रकी वधू बीमार पड़ गयी। अच्छी होती न देखकर श्रीदिवाकरजीकी स्त्री बीमारीका कारण पूछनेके लिये गुप-चुप एक तान्त्रिकके पास गयी। वह भैरवका उपासक था। यह बात जब श्रीदिवाकरजीको मालूम हुई तो आप स्त्रीके ऊपर बहुत रुष्ट और बोले—तुझ-सरीखी अभक्ता स्त्रीको मैं घरमें नहीं रखूँगा, तुझे अभी मारकर भगा दूँगा। तुझे भगवान् और उनके भक्तोंमें विश्वास नहीं है। किसीको

किसी प्रकारका कष्ट है तो उसकी श्रेष्ठ औषधि भक्त और भगवान्‌का चरणामृत है। फटकार सुनकर वह बेचारी काँप गयी और बोली कि मैं तो भोली-भाली हूँ, अतः मैं वहाँ चली गयी, आप मेरा अपराध क्षमा करें। इसके बाद स्त्रीने भी अनन्य भक्ति-भावको स्वीकार किया। सन्त-चरणामृतसे ही वधू स्वस्थ हो गयी। भगवान् श्रीरामके ऐसे अनन्य उपासक थे श्रीदिवाकर सोतीजी!

श्रीलालदासजी

हृदै हरी गुन खानि सदा सतसँग अनुरागी।
पद्मपत्र ज्यों रह्यो लोभ की लहर न लागी॥
बिष्नुरात सम रीति बघैरै त्यों तन त्याज्यो।
भक्त बराती बृंद मध्य दूलह ज्यों राज्यो॥
खरी भक्ति हरिषांपुरै गुरु प्रताप गाढ़ी गही।
जीवत जस पुनि परम पद लालदास दोनों लही॥ १६४॥

श्रीलालदासजीको यहाँ जीवनमें सुयश और शरीर त्यागनेके बाद परमपद वैकुण्ठधाम मिला। आपका हृदय भगवदीय गुणोंकी खान था। आप सत्संगके बड़े प्रेमी थे। जैसे कमलपत्र जलमें रहकर उससे अछूता रहता है, उसी तरह संसारमें रहते हुए भी सांसारिक सुखोंका लोभ आपके मनमें नहीं आया। बघेरे ग्राममें श्रीमद्भागवतकी कथाको सुनकर श्रीपरीक्षित्‌की तरह आपने भी अपने शरीरको छोड़ा। बारातमें जैसे दूल्हेकी शोभा होती है, उसी प्रकार सन्तोंकी मण्डलीमें आप सुशोभित होते थे। अपने गुरुदेवके प्रतापसे गुरु आश्रम हरिषांपुरमें रहकर सच्ची भगवद्भक्ति आपने ग्रहण की। इस प्रकार आपका जीवन और शरीरान्त दोनों धन्य रहे॥ १६४॥

श्रीलालदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीलालदासजी बड़े ही उच्च कोटिके वैष्णव सन्त थे। एक वणिक् आपका सेवक था। उसके हृदयमें भी भक्ति थी। एक बार आपके पास बाईस साधुओंकी एक जमात आयी। वे बड़े भूखे थे। आपने वणिक् शिष्यसे कहा कि शीघ्र ही बनी-बनायी रसोई लाकर सब सन्तोंको भोजन कराओ। उसने कहा—महाराज! सामान तो घरमें बहुत-सा भरा है, पर पिताजीने बहनके विवाहके निमित्त बनवाया है। मैं उसे नहीं ला सकता हूँ। मुझसे धन ले लीजिये और आप सन्तोंको जिमाइये। आपने कहा—नहीं, तुम घर जाओ, तुम्हारे पिता इस समय घरपर नहीं हैं। वे किसी कामसे दूसरे गाँवको गये हैं। सन्तोंको जिमानेमें सामान घटेगा नहीं। जितना लाओगे उतना ही बढ़ जायगा। आज्ञा मानकर सेवक झट घर गया। सामान बाँधने लगा तो उसकी माँने पूछा—कहाँ ले जा रहे हो? इसने उत्तर दिया कि कुछ सामान उठाकर सुरक्षित स्थानपर पहुँचा रहा हूँ। यहाँसे तो सब खर्च हो जायगा। ऐसा कहकर उसने सामान लाकर सन्तोंको खूब भोजन कराया। सन्तोंने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। श्रीलालदासजीके कथनानुसार सामान ज्यों-का-त्यों रहा। उसके पिताने यह रहस्य नहीं जाना। पीछेसे इस चमत्कारका पता पड़ा तो सभीको सन्त-सेवामें विश्वास हुआ। श्रीलालदासजीकी कीर्ति चारों ओर फैल गयी।

एक बार एक अत्यन्त निर्धन ब्राह्मण अपने पुत्र और स्त्रीके सहित श्रीलालदासजीके पास आया और रोकर बोला कि मेरी दरिद्रता दूर करो, मैं भूखों मर रहा हूँ। आपने कहा—मेरी बात मानो तो मैं तुम्हें एक उपाय बताऊँ। ब्राह्मणने कहा—'बताओ, महाराज!' आपने बतलाया कि आजसे ही तुम सन्तों और अतिथियोंकी सेवा आरम्भ कर दो। ब्राह्मणने कहा—भगवन्! यह काम धनके बिना कैसे होगा? आपने कहा—इसमें धन नहीं चाहिये, तुम्हें जब जो कुछ मिले, तब तुम उसीमेंसे चौथे अंशसे सन्त-सेवा कर दिया

करो। धीरे-धीरे तुम्हारे पास छः मासमें बहुत-सा अन्न-धन हो जायगा। सन्तके वचनमें विश्वास करके वह भिक्षाके द्वारा सन्त-सेवा करने लगा कि कालान्तरमें सन्त-सेवाके प्रतापसे वह धनी-मानी हो गया। एक बार उसने घरकी गिरी दीवाल खोदी, उसमें उसे बहुत-सा धन मिला। उसने श्रीलालदासजीके चरणोंमें बहुत-सा धन भेंट किया, उससे विशाल भण्डारा हुआ। इस प्रकार सन्त-सेवाका महत्त्व आपने बढ़ाया।

एक बार एक सरदार असाध्य रोगसे ग्रसित अपनी पत्नीको लेकर श्रीलालदासजीके पास आया। आपने उसे सन्त-चरणामृतके सेवनका उपदेश दिया, जिससे वह निरोग होकर सन्त-सेवामें प्रेम रखने लगी।

भक्तदामगुणचित्रणीमें उनके परमधामगमनकी घटनाका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

जब निज तनकी मृत्यु लखानी। लालदास तब अस विधि ठानी॥
मण्डल के सब सन्त बुलावा। कीन्ह महोच्छव समय बनावा॥
कथा भागवत भयौ समाजा। सन्तन की अरचा भल साजा॥
सन्त सभा में कह्यौ सुनाई। राम धाम को अब हम जाई॥
सन्तन बन्दि तज्यौ तहँ देहा। लालदास पहुँच्यौ हरि गेहा॥
सब जन जै जै सबद उचारा। विदित बंघेरा ग्राम मँझारा॥

श्रीमाधवग्वालजी

निसि दिन यहै बिचार दास जिहिं बिधि सुख पावैं।
तिलक दाम सों प्रीति हृदै अति हरिजन भावैं॥
परमारथ सों काज हिएँ स्वारथ नहिं जानै।
दसधा मत्त मराल सदा लीला गुन गानै॥
आरत हरिगुन सील सम प्रीति रीति प्रति पाल की।
भक्तनि हित भगवत रची देही माधौ ग्वाल की॥ १६५॥

भगवान्ने भक्तोंके हितके लिये श्रीमाधवग्वालजीको इस संसारमें प्रकट किया। ये दिन-रात इसी सोच-विचारमें डूबे रहते थे कि भक्तोंको कैसे सुख पहुँचे? तिलक-कण्ठीसे एवं उनके धारण करनेवाले भक्तोंसे आप बड़ा प्रेम करते थे। भगवद्भक्त इन्हें हृदयसे अच्छे लगते थे। आप केवल परमार्थसे प्रयोजन रखते थे। हृदयमें स्वार्थकी भावना कदापि नहीं रखते थे। ये प्रेमाभक्तिके मराल थे। सदा भगवान्की लीलाओंका गान किया करते थे और भगवद् गुणानुवादको सुननेके लिये सदा आतुर रहते थे। सुन्दर, सरल-स्वभाव, सर्वत्र समत्व बुद्धि रखकर आपने प्रीतिकी रीतियोंका प्रतिपालन किया, आदिसे अन्ततक प्रीतिका निर्वाह किया॥ १६५॥

श्रीमाधवग्वालजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीमाधवग्वालजी गूजर गौड़ जातिके ब्राह्मण थे। 'ग्वाल' यह इनकी उपाधि थी। ये महान् परोपकारी और भक्तसेवी-सन्त थे। एक बार आपके पास एक सन्तने आकर कहा कि मुझे गुरु-महोत्सव करना है, उसके लिये आप कुछ धन दीजिये। आपने कहा कि मैं यथासम्भव धनका प्रबन्ध अवश्य करूँगा। फिर आपने ग्रामवासियोंके पास जाकर कहा कि आप लोग चन्दा करके कुछ धन इकट्ठा कर दीजिये, जिससे इस सन्तके गुरुका भण्डारा हो जाय, धन तो नाशवान् है, जो धन सन्त-भगवान्की सेवामें नहीं लगता है, उसे चोर ले जाते हैं अथवा किसी दूसरे प्रकारसे नष्ट हो जाता है। जैसे कूपसे जलके निकलते रहनेपर जल शुद्ध रहता है, उसी प्रकार गृहस्थके घरसे यदि सेवार्थ धन जाता है तो वह शुद्ध रहता है अन्यथा गन्दा हो जाता है, अतः कुछ-न-कुछ दान अवश्य करना चाहिये। इससे आप लोगोंका परम कल्याण होगा।

इस प्रकार आपने बहुत कहा-सुना, पर लोगोंने चन्दा देना स्वीकार न किया। तब आप उस सन्तको लेकर अपने घर आये। आपने जो कुछ धन और सामान सन्त-सेवा एवं कन्याके ब्याहके लिये संग्रह कर रखा था, वह सब उस सन्तको दे दिया। इससे वे सन्त बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने बड़े उत्साहसे भण्डारा किया। यह सुनकर माधवग्वालजीकी पत्नीको बड़ा दुःख एवं रोष हुआ। वह इनसे पूछने लगी कि आपने कन्याके विवाहका सामान क्यों दे दिया? माधवदासजीने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, सुनी-अनसुनी कर दिया। इसके बाद वह एकदिन भण्डार-घरमें गयी तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वहाँ सब सामान ज्यों-का-त्यों रखा हुआ था, तब दौड़कर पतिके पास आयी और बोली—यह क्या हुआ, सब सामान तो आपने सन्तको दे दिया था, फिर कहाँसे आ गया! आपने सामान दिया था या नहीं? तब आपने प्रभुकी कृपाका अनुभव करके उसे समझाते हुए कहा कि यह सन्त-सेवाका चमत्कार है। सन्तको दिया धन अक्षय होता है।

श्रीप्रयागदासजी

मानस बाचक काय राम चरननि चित दीनो।
भक्तनि सों अति प्रेम भावना करि सिर लीनो॥
रास मध्य निर्जान देह दुति दसा दिखाई।
आड़ो बलियो अंक महोछौ पूरी पाई॥
क्यारे कलस औली ध्वजा बिदुष सलाघा भाग की।
श्रीअगर सुगुरु परताप तें पूरी परी प्रयाग की॥ १६६॥

सद्गुरु श्रीअग्रदेवाचार्यके प्रतापसे श्रीप्रयागदासजीके भक्त-भगवत्सेवा-सम्बन्धी सभी कार्य पूर्ण हुए, उनमें कभी किसी प्रकारसे विघ्न नहीं आया। इन्होंने मन, वाणी और शरीरसे सन्त-भगवन्तकी सेवा की। सब ओरसे मनको हटाकर श्रीरामजीके चरणोंमें लगाया। भक्तोंमें आपका अत्यन्त प्रेम था। आपने उन्हें अपनी भावनासे प्रभुतुल्य सर्वश्रेष्ठ माना और उनकी खूब सेवा की। एक बार जब रासलीला हो रही थी। उस समय आपने लीलामें तन्मय होकर शरीर त्याग दिया। आड़ो-बलियोके महोत्सवमें आपने पूरी-प्रसाद ग्रहण किया। क्यारे नामक ग्रामके मन्दिरपर कलश चढ़ाया और औली गाँवमें ध्वजारोपण कराया। इस दिव्य चमत्कारको देखकर विद्वानों और सन्तोंने आपके भाग्यकी प्रशंसा की॥ १६६॥

श्रीप्रेमनिधिजी

सुंदर सील सुभाव मधुर बानी मंगल करु।
भक्तनि कों सुख दैन फर्‌यो बहुधा दसधा तरु॥
सदन बसत निर्बेद सारभुक, जगत असंगी।
सदाचार ऊदार नेम हरिदास प्रसंगी॥
दया दृष्टि बसि आगरैं कथा लोग पावन कर्‌यो।
प्रगट अमित गुन प्रेमनिधि धन्य बिप्र जेहिं नाम धर्‌यो॥ १६७॥

श्रीप्रेमनिधिजीमें प्रेमाभक्तिसम्बन्धी अनन्त गुण प्रकट थे। उस ज्योतिषी विप्रको धन्यवाद है, जिसने गुणोंके अनुरूप ऐसा (सार्थक) नाम रखा। आप सुन्दर, शीलवान् और स्वभावसे नम्र थे। आपकी वाणी

मधुर, रसमयी और श्रोताओंका सर्वविध कल्याण करनेवाली थी। हरिभक्तोंको सुख देनेके लिये आप कल्पवृक्षके समान थे, जिसमें प्रेमा-पराभक्तिके बहुतसे फल लगे रहते थे। घरमें रहते हुए आप गृहस्थाश्रमके प्रपंचोंसे परम विरक्त थे। विषयोंको त्यागकर सारतत्त्व प्रेमका आस्वादन करनेवाले, सदाचारी और परम उदार थे। नियमपूर्वक भगवद्भक्तोंके साथ सत्संग किया करते थे। (आगरानिवासी) भक्तोंपर दया करके आपने श्रीवृन्दावनसे बाहर आगरेमें निवास किया और भगवान्‌की कथाओंके द्वारा सबको पवित्र किया॥ १६७॥

श्रीप्रेमनिधिजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीप्रेमनिधिजी मिश्र श्रीविट्ठलनाथजीके शिष्य थे। आप महान् प्रेमी सन्त थे और आगरेमें रहते थे। आप बड़े सुन्दर भावसे श्रीश्यामबिहारीजीकी सेवा-पूजा किया करते थे। नित्य कुछ रात रहे ही श्रीठाकुरसेवाके लिये आप श्रीयमुनाजीसे जल लाया करते थे। एक बार वर्षाका मौसम था, अधिक वर्षाके कारण जहाँ-तहाँ सर्वत्र रास्तेमें कीचड़ हो गया। तब आपको बड़ी चिन्ता हुई कि यमुनाजल कैसे लायें? आपने अपने मनमें विचारा कि यदि अँधेरेमें जल लेने जाऊँ तो कीचड़में फँसनेका भय है और यदि प्रकाश होनेपर जाऊँ तो आने-जानेवाले लोगोंसे छू जाऊँगा। यह भी ठीक न होगा। अन्तमें सोच-विचारकर निश्चय किया कि अँधेरेमें ही जल लाना ठीक है; क्योंकि उस समय किसीसे छूनेका डर नहीं रहेगा। जैसे ही आप दरवाजेके बाहर निकले तो आपने देखा कि एक सुकुमार किशोर बालक मशाल लिये जा रहा है। आप भी उसीके पीछे-पीछे चल दिये।

श्रीप्रेमनिधिजीने अपने मनमें समझा कि यह बालक किसीको पहुँचाकर वापस लौट रहा है, कुछ देरके बाद अपने घरकी ओर मुड़कर गायब हो जायगा। पर अच्छा है, कुछ देर तो प्रकाश मिलेगा। जितनी देर मिलेगा, उतनी दूरतक सुखसे पहुँच जाऊँगा। इस प्रकार आप सोचते ही रहे, परंतु वह बालक किसी दूसरी ओर न मुड़कर यमुनाजीके किनारेतक आया। इससे इनके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ और उस मशालची लड़केमें ही मनको लगाये हुए आपने श्रीयमुनाजीमें स्नान किया, परंतु इनकी बुद्धिको उसके रूपने अपनी ओर खींच लिया था। स्नानके बाद जलसे भरा घड़ा जैसे ही आपने अपने सिरपर रखा, उसी क्षण पहलेकी तरह वह बालक फिर आ गया और फिर आप उसके पीछे-पीछे चले। जैसे ही आप अपने घरके द्वारपर पहुँचे, वैसे ही वह मशालची लड़का गायब हो गया। अहो! प्रभुने यह क्या किया? वह बालक कहाँ गया? कौन था? उसे पुनः देखनेके लिये आप आतुर हो गये और आपके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

प्रेमनिधि नाम, करैं सेवा अभिराम स्याम, आगरौ सहर निसि सेस जल ल्याइयै।
बरखा सु रितु जित तित अति कीच भई भई चित चिन्ता 'कैसे अपरस आइयै'॥
जौ पै अन्धकार ही में चलौं तौ बिगार होत, चले यों बिचारि 'नीच छुवै न सुहाइयै'।
निकसत द्वार जब देख्यौ सुकुमार एक हाथ में मसाल 'याके पाछे चले जाइयै'॥ ५९४॥
जानी यहै बात पहुँचाये कहूँ जात यह अबहीं बिलात भले चैन कोऊ घरी है।
जमुना लौं आयौ अचरज सो लगायौ मन, तन अन्हवायौ, मति वाही रूप हरी है॥
घट भरि धर्‌यौ सीस, पट वह आय गयौ, आय गयौ घर, नहीं देखी, कहा करी है।
लागी चटपटी अटपटी न समझि परै, भटभटी भई नई, नैन नीर झरी है॥ ५९५॥

श्रीप्रेमनिधिजी बहुत अच्छी कथा कहते थे। प्रभुके स्वरूपको दरसा देते थे, उससे श्रोताओंके मनको अपनी ओर खींचकर उसमें भगवद्-भक्तिके भावोंको भर देते थे। यह देखकर दुष्टोंके हृदयमें बड़ा दुःख हुआ। ईर्ष्यावश उन्होंने बादशाहको सिखाया, शिकायत करते हुए उन्होंने कहा कि 'प्रेमनिधिके घरमें अच्छे-अच्छे घरानेकी बहुत-सी औरतें हर समय आती-जाती रहती हैं।' यह सुनकर बादशाह क्रोधसे जल उठा।

उसने अपने सिपाहियोंको आज्ञा दी कि 'प्रेमनिधिको फौरन पकड़ लाओ।' श्रीप्रेमनिधिजी जिस समय जलभरी झारी बड़े प्रेमसे भगवान्‌के सामने रखकर उन्हें जल पिलाना चाहते थे, उसी समय चोबदारोंने आकर इन्हें बादशाहकी कठोर आज्ञा सुनायी और कहा—'अभी इसी समय हमारे साथ चलो।' ऐसा कहकर वे लोग शोर मचाने लगे। तब भगवान्‌को जल पिलाये बिना ही श्रीप्रेमनिधिजी बादशाहके समीप गये। उसने इनसे पूछा—कहो, क्या मौज-बहार है, तुम स्त्रियोंके साथ प्रसंग करते हो, हमारे राज्यमें ऐसा अन्याय? यह सुनकर आपने कहा—'मैं संसारी विषयोंकी बात न कहकर भगवान् श्रीकृष्णकी ही कथाओंका वर्णन करता हूँ। जिन स्त्रियों या पुरुषोंको कथा अच्छी लगती है, वे आकर कथामें बैठते हैं। जो किसी कथारूपी तीर्थमें श्रोताको डाँटे, फटकारे या निकाले अथवा उनको बुरी निगाहसे देखे तो उसे बड़ा भारी पाप लगता है।' यह सुनकर बादशाहने कहा—'यह बात तो तुमने बहुत ठीक कही, परंतु तुम्हारी गली-मुहल्लेके लोगोंने ही आकर तुम्हारे सम्बन्धमें मुझसे जो कुछ कहा है, उसके अनुसार तुम्हारा चाल-चलन, रहन-सहन कुछ और ही है।' यह कहकर बादशाहने चोबदारोंसे कहा—'तबतक इन्हें हवालातमें बन्द कर दो, अच्छी तरह जाँच-पड़तालके बाद मैं फैसला करूँगा।' ऐसी आज्ञा पाकर सिपाहियोंने इन्हें ले जाकर कैदखानेमें बन्द कर दिया।

भक्तवर श्रीप्रेमनिधिजीको कैदखानेमें बन्द करवाकर बादशाह उस रातमें जब सोया तो श्रीबिहारीजीने उसके इष्ट मुहम्मद साहबका भेष बनाकर स्वप्नमें उससे कहा—'मुझे बहुत जोरकी प्यास लगी है।' बादशाहने कहा—'आबखानेमें जाकर पानी पी लीजिये।' यह सुनकर प्रभु बहुत रुष्ट हुए और बोले—वहाँ कोई प्रेमी भक्त है, जो मुझे प्रेमसे पानी पिलाये? जब बादशाहने कुछ उत्तर नहीं दिया, तब भगवान् जोरसे उसे डाँटते हुए बोले—'अरे मूर्ख! तूने मेरी बात नहीं सुनी।' बादशाहने कहा—'जिसे आप आज्ञा दें, वही भाग्यशाली पानी पिलायेगा।' पुनः प्रभुने कहा—'उसे तो तूने कैदखानेमें बन्द कर रखा है।' यह सुनकर बादशाह घबड़ाया और डर गया। उसके हृदयमें प्रेमनिधिजीके प्रति सद्भाव भर गया और वह सोयेसे जग गया।

उसी समय रातको ही बादशाहने दास-दासियोंको आज्ञा दी कि 'शीघ्र ही श्रीप्रेमनिधिजीको कैदखानेसे छुड़ाकर लाओ।' यह सुनकर दासी-दास सभी दौड़े और श्रीप्रेमनिधिको ले आये। इन्हें देखते ही बादशाह इनके चरणोंमें गिर पड़ा और रोते हुए बोला—'साहब प्यासे हैं, आप अभी ही जाकर उन्हें जल पिलाइये। वे किसी दूसरेके हाथसे नहीं पीते हैं, आपपर बहुत ही प्रसन्न हैं, ठाकुरजीकी सेवाके लिये आप मुझसे देश-गाँव तथा इच्छानुसार धन ले लीजिये। सर्वदा अपने प्यारे प्रभुकी सेवामें लगे रहिये। अब आपको कभी कोई कष्ट मैं न दूँगा।' श्रीप्रेमनिधिजीने कहा—मैं सदा अपने प्रभुमें मन लगाये रहता हूँ, धन पाकर बहुतसे लोग नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं, अतः मैं कुछ भी न लूँगा। बादशाहने मशालचियोंके साथ उसी समय श्रीप्रेमनिधिजीको घर भेज दिया। श्रीप्रेमनिधिजीने घर आकर स्नान किया और श्रीबिहारीजीको जल पिलाकर उन्हें प्रसन्न किया तथा स्वयं भी कृपाका अनुभव करके प्रसन्न हुए।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया—

कथा ऐसी कहैं जामैं गहैं मन भाव भरै करैं कृपादृष्टि दुष्टजन दुख पायौ है।
जायकै सिखायौ बादशाह उर दाह भयौ, कही तिया भली को समूह घर छायौ है॥
आए चौबदार कहैं चलो एही बार वारि झारी प्रभु आगे धर्‌यौ चाहै सोर लायौ है।
चले तब संग गए पूछै नृप रंग कहा? तियनि प्रसंग करौ? कहिकै सुनायौ है॥ ५९६॥

कान्ह भगवान् ही की बात सो बखानि कहौं, आनि बैठे नारी नर लागी कथा प्यारी है।
काहू कों बिडारै, झिरकारैं नैकु टारैं, बिषै दृष्टि कै निहारैं, ताकों लागै दोष भारी है॥
कही 'तुम भली तेरी गली ही के लोग मोसों आयकै जताई वह रीति कछु न्यारी है'।
बोल्यौ 'याहि राखौ सब करौं' निरधार नीके, चले चोबदार लैकै, रोके प्रभु धारी है॥ ५९७॥

सोयौ बादशाह निसि, आयकै सुपन दियौ, कियो वाकौ इष्टभेष कही प्यास लागी है।
पीवौ जल 'कही' आबखाने लै बखाने तब अति ही रिसाने को पियावे, कोऊ रागी है॥
फेर मारी लात अरे सुनी नहीं बात मेरी, आप फुरमावौ जोई प्यावै बड़भागी है।
सो तौ तैं लै कैद कर्‌यौ सुनि अरबर्‌यौ डर्‌यौ, भर्‌यौ हिये भाव मति सोवत तें जागी है॥ ५९८॥
दौरे नर ताही समै वेगि दै लिवाय ल्याये, देखि लपटाये पांय नृप दृग भीजे हैं।
साहिब तिसाये जाय अबही पियावौ नीर, और पै न पीवैं, एक तुमही पै रीझे हैं॥
लेवौ देस गाँव सदा पीव हीं सो लग्यौं रहौं, गहों नहीं नेक धन पाय बहु छीजे हैं।
संग दै मसाल, ताही कालमें पठाये, यों कपाट जाल खुले, लाल प्यायौ जल, धीजे हैं॥ ५९९॥

श्रीराघवदास दूबलोजी

सदाचार गुरु सिष्य त्याग बिधि प्रगट दिखाई।
बाहेर भीतर बिसद लगी नहिं कलिजुग काई॥
राघौ रुचिर सुभाव असद आलाप न भावै।
कथा कीरतन नेम मिलें संतनि गुन गावै॥
ताप तोल पूरौ निकष (ज्यौं) घन अहरनि हीरो सहँत।
दूबरो जाहि दुनियाँ कहै सो भक्त भजन मोटो महँत॥ १६८॥

जिन श्रीराघवदासजीको दुनियाँके लोग 'दुर्बलदास' या 'दुबला' के नामसे पुकारते थे, वे शरीरसे यद्यपि दुर्बल थे, परंतु सन्तोंकी सेवा करनेमें मोटे अर्थात् बड़े महन्त थे। आपने सदाचार, गुरुता तथा शिष्योंसे कुछ भी धन न लेकर त्यागकी रीति सबको प्रत्यक्ष दिखलायी। आप बाहर और भीतरसे निर्मल थे। कलियुगके दोष-पाप आपका स्पर्श नहीं कर सके। आपका स्वभाव बड़ा सुन्दर था, मिथ्या-भाषण आपको अच्छा नहीं लगता था। नित्य नियमसे सन्तोंके साथ भक्त-भगवत्-कथा-वार्ताको कहते-सुनते और नाम-कीर्तन करते थे। जैसे तपाने-छेदने और कसौटीपर कसनेसे सोनेकी, निहाईपर घनोंकी चोटसे हीरेकी पहचान होती है, उसी प्रकार श्रीराघवदासजीने भी आपत्तियोंको सहनकर अपनी सच्ची साधुताको लोकमें प्रमाणित किया॥ १६८॥

श्रीराघवदास दूबलोजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीराघवदासजी सच्चे साधु-सेवी और गुरुभक्त सन्त थे। एकबार आप सन्त-दर्शन और भक्ति-प्रचारार्थ विचरते हुए एक धनी-मानी वैश्य भक्तके यहाँ पहुँचे। वह साधुओंकी सेवा तो अच्छी तरह करता था, पर उनकी परीक्षा भी लिया करता था। उसने श्रीराघवदासजीको बड़े आदरके साथ घरमें ठहराया और भलीभाँति भोजन कराया। शयनके समय उस वैश्यने अपनी स्त्रीसे कहा कि जाकर सन्तकी सेवा करो, परीक्षा लो। वह श्रृंगार करके सेवार्थ उपस्थित हुई। राघवदासजीने सेवा करवाना स्वीकार नहीं किया। तब भक्त-दम्पतीने बड़ी विनती करके कहा कि हम लोग आप सन्तोंके क्रीतदास हैं। यदि आप मेरी सेवा स्वीकार न करेंगे तो हमारा जीवन ही व्यर्थ हो जायगा। उसका आग्रह देखकर आप समझ गये कि ये लोग सेवाके साथ-साथ परीक्षा लेना चाहते हैं, अतः आपने आज्ञा दे दी। वह चरण दबाने लगी। आप भगवद् ध्यानमें मग्न हो गये। बड़ी देर बाद इनको सोता जानकर चली गयी। इस प्रकार उसे सेवा करते-करते बीस दिन बीत गये। सन्तके मनमें नाममात्रका भी विकार नहीं दिखायी पड़ा, तब इक्कीसवें दिन उसने कहा कि आप मेरी गोदमें विराजकर मुझे कृतार्थ करो। राघवदासजी 'जो आज्ञा माताजी!' कहकर बालक बन गये और गोदमें

बैठकर स्तनपान करने लगे। यह देखकर वैश्य भक्त आपके चरणोंमें गिर पड़ा और क्षमा-याचना करने लगा। श्रद्धालु भक्त दम्पतीको आपने समझाया कि 'सन्तोंकी परीक्षा लेनेसे भक्तिके घटनेकी आशंका रहती है, अतः भविष्यमें किसी सन्तकी परीक्षा न लेकर यथाशक्ति सेवा करना और उनके सत्संगसे लाभ उठाना। इस उपदेशको पाकर वे कृतकृत्य हो गये और सप्रेम सेवा करने लगे।'

एक बार श्रीराघवदासजी एक भक्त राजाके यहाँ पहुँच गये। उसने इन्हें पहचान लिया कि ये महान् सन्त हैं, अतः सादर ठहराया और इनकी खूब सेवा करने लगा। नित्य कथा-सत्संग होने लगा। एक असहनशील ब्राह्मणने सोचा कि—'अब हमारा सम्मान नहीं होगा, अतः इनको बदनाम करनेके लिये उसने एक वेश्याको कुछ रुपये और एक अँगोछा दिया और कहा कि जिस समय कथा हो रही हो, उसी समय जाकर यह अँगोछा बाबाजीको देकर केवल यह कह देना कि 'महाराज! रातको आप यह अँगोछा मेरे यहाँ भूल आये थे सो लीजिये।' रुपये तुम्हारे इनामके हैं। ब्राह्मणके सिखाये अनुसार वेश्याने अँगोछा दिया तो आपने निःसंकोच ले लिया और उसकी बातका खण्डन नहीं किया। इससे दूसरे श्रोता और राजा सभी असमंजसमें पड़ गये। पश्चात् बुद्धिमान् राजाने उस वेश्याको बुलाकर डराया-धमकाया। तब उसने सच्ची बात बता दी। राजाने ब्राह्मणको मार डालनेकी आज्ञा दी, जिससे कि भविष्यमें कोई किसी सन्तको झूठा कलंक न लगाये। श्रीराघवदासजीने जब यह सुना तो राजा तथा ब्राह्मणको समझाया और क्षमा किया। अपकीर्तिकी चोटको आपने उसी प्रकार सहन किया, जैसे निहाईपर रखा हीरा घन की चोट को सहता है।' इस प्रकार आपने राजा-प्रजा सभीमें भक्तिकी स्थापना की।

सन्तसेवी भक्त

हरिनारायन नृपति पदम बेरछैं बिराजै।
गाँव हुसंगाबाद अटल ऊधौ भल छाजै॥
भेलै तुलसीदास ख्यात भट देवकल्यानो।
बोहिथ बीरारामदास सुहेलै परम सुजानो॥
औली परमानंद कै ध्वजा सबल धर्म कि गड़ी।
दासनि के दासन्न को चौकस चौकी ए मड़ी॥ १६९॥

भगवद्भक्तोंकी सावधानीसे सेवा करनेके लिये ये सुन्दर स्थान बने। बेरछामें श्रीहरिनारायणजी और राजा श्रीपद्मजी, होशंगाबादमें श्रीऊधौजी अटल होकर विराजते थे। भेलामें प्रसिद्ध श्रीतुलसीदासजी और श्रीदेवकल्याणजी, सुहेलामें परम सुजान श्रीबोहिथजी तथा श्रीबीरारामजी विराजते थे। औलीमें श्रीपरमानन्दजीका ऊँचा और पुष्ट वैष्णवधर्मका झण्डा गड़ा हुआ था। ये महान् सन्तसेवी थे॥ १६९॥

श्रीहरिनारायणजी

श्रीहरिनारायणजी बड़े ही सन्त-सेवी भगवद्भक्त थे। आप अच्छी प्रकारके मेवा-पक्वान्न प्रसाद सन्तोंको पवाते तथा वस्त्र, पात्र आदि देकर मीठी वाणीसे उन्हें सन्तुष्ट करते। इनका एक पुत्र था, वह उद्दण्ड प्रकृतिका था, उसका सन्तोंमें भाव न था। इसलिये आपके मनमें बड़ी-भारी चिन्ता रहती कि इसका कल्याण कैसे होगा? मेरे मरनेके बाद सन्त-सेवा बिलकुल बन्द हो जायगी। आप मन-ही-मन प्रभुसे प्रार्थना करते कि इस बालकको सद्बुद्धि दो, भक्तोंमें इसका प्रेम हो। युवावस्थाको प्राप्तकर वह लड़का सेनामें भर्ती हो गया। कुछ दिन बाद युद्ध करनेके लिये उसे एक मोर्चेपर जाना पड़ा। भयंकर संग्राम हुआ। यह भक्तका बालक भी शत्रुओंसे घिर गया। तब घबराया और पिताकी भक्तिका ध्यान आया। इसने मन-ही-मन प्रार्थना की

और प्रतिज्ञा की कि यदि मेरे प्राण बच गये तो मैं भी पिताजीकी तरह भक्त-भगवान्‌की सेवा करूँगा। हार्दिक प्रार्थनाका ऐसा प्रभाव हुआ कि यह अकेला बच गया, शरीरमें चोट भी नहीं आयी और सेनाके सभी लोग मारे गये। इससे इसका भी सन्तोंमें अटल विश्वास और प्रेम हो गया। अब तो यह भी अपने पिताकी तरह सन्त-सेवाको महत्त्व देने लगा। इस प्रकार प्रभुने श्रीहरिनारायण भक्तकी इच्छा पूरी की।

श्रीऊधौजी

श्रीऊधौजीकी सन्तोंमें बड़ी निष्ठा थी। आप बड़ी श्रद्धाके साथ सन्त-सेवा करते थे। नित्य ही सन्तोंका आना-जाना होता रहता था। कण्ठी, माला, तिलकधारी सन्तोंके अतिरिक्त दुष्ट, विमुखजन आपके आश्रमकी ओर नहीं आते थे। श्रीउद्धवजीको जब कभी यह पता पड़ जाता कि अमुक स्थानपर सन्तजन पधारे हैं तो वहाँ आप अवश्य जाते, सन्तोंके दर्शन करते, उन्हें अपने घर लिवा लाते और बड़े प्रेमसे उनकी सेवा करते। एक बार आपको समाचार मिला कि किसी सन्तके महोत्सवमें बहुत-से साधु-महात्मा पधारे हैं। आपने वहाँ पहुँचकर दर्शन-सत्संग किया। पश्चात् सभी सन्तोंसे विनय की कि आप लोग पधारकर दासके घरको पवित्र करें। इनके प्रेमको देखकर सभी सन्त चलनेके लिये तैयार हो गये। तब आपके नौकरने आपको सावधान किया कि घरपर इतने सन्तोंके भोजनके लिये सामान नहीं है, आपने सबको न्यौता कैसे दे दिया? आपने कहा सन्तोंको पधारने दो, बादमें देखा जायगा। सन्तोंकी भीड़ आपके द्वारपर पहुँच गयी, तब आपको भी चिन्ता हुई कि अब क्या करूँ? आपकी सन्तोंमें भक्ति देखकर आकाशवाणी हुई कि चिन्ता मत करो, इतने सामानसे ही पूर्ति हो जायगी। आपने बड़े उल्लासपूर्वक भोजन बनवाया, भोग लगनेके बाद सन्तोंने पूर्ण तृप्त होकर प्रसाद पाया और आशीर्वाद दिया। बचा हुआ प्रसाद आपने ग्रामवासियोंको दे दिया। इस चमत्कारसे सभीके मनमें सन्त-सेवाका भाव और दृढ़ हो गया।

भेलाग्राम-निवासी श्रीतुलसीदासजी

भेलाग्राम-निवासी श्रीतुलसीदासजी सन्तोंकी रुचिके अनुसार उनकी सेवामें ही सुख मानते थे। एक बार ये किसी दूसरे गाँवको गये और वहाँसे सन्त-सेवाके लिये एक गाड़ी गेहूँ लेकर चले। रास्तेमें कई डाकुओंने घेरकर कहा कि गाड़ी छोड़कर भाग जाओ, अन्यथा तुम्हें जानसे मारकर हम लोग गेहूँकी गाड़ी हाँक ले जायँगे। बिना किसी हर्ष-विषादके आप गाड़ी छोड़कर चल दिये। अभी आप बीस ही पग दूर गये थे कि प्रभुने कला दिखायी। दोनों बैल गाड़ीसे अलग होकर सिंहके समान गरजे और चोरोंको मारने दौड़े। सभी भागकर श्रीतुलसीदासजीके पास पहुँचे और चरणोंमें पड़कर बोले—महाराज! अपराध क्षमा करो, अपनी गाड़ी ले जाओ। आपने पूछा कि गाड़ी लेकर अब क्यों छोड़ रहे हो, उसे ले जाओ। तब उन्होंने सब हाल कहा और सदाके लिये श्रीतुलसीदासजीके भक्त बन गये। उन्होंने चोरी छोड़ दी। इस प्रकार आपने सन्त-सेवाके प्रतापसे दुष्टोंको भी सज्जन बनाया।

भगवद्भक्त नारियाँ

देमा प्रगट सब दुनी रामाबाई (बीरां) हीरामनि।
लाली नीरा लच्छि जुगल पार्बती जगत धनि॥
खीचनि केसी धना गोमती भक्त उपासिनि।
बादररानी बिदित गंग जमुना रैदासिनि॥
जेवा हरसा जोइसिनि कुवँरिराय कीरति अमल।
अबला सरीर साधन सबल ए बाई हरिभक्ति बल॥ १७०॥

सम्पूर्ण जगत्में प्रसिद्ध श्रीदमाबाई, रामाबाई, वीराबाई, हीरामनि, लाली, नीराँ, लक्ष्मीबाई, इस संसारमें धन्य दोनों पार्वती बाइयाँ, खीचनि, केशी, धनाबाई, भक्तोंकी उपासना करनेवाली गोमती, जगत् प्रसिद्ध बाँदररानी, गंगा-जमुना दोनों बाइयाँ (रैदासिनि), जेवाबाई, हरिषाबाई, जोइसिनि और पवित्र कीर्तिवाली कुँवरिरायजी—ये बाइयाँ शरीरसे अबला थीं, परंतु इनके भजन-साधन अत्यन्त सबल अर्थात् श्रेष्ठ थे। इनमें भक्तिका अपार बल था॥ १७०॥

इनमेंसे कुछ भगवद्भक्त नारियोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीदमाबाईजी

श्रीदमाबाईजी अत्यन्त उच्चकोटिकी सन्त थीं। भगवद्भजनपरायण दमाबाईकी सन्त-सेवामें बड़ी रुचि थी। सन्तोंके श्रीमुखसे भगवद् गुणानुवाद सुनते-सुनते आपके मनमें अभिलाषा हुई कि प्रभु कृपा करके दर्शन दें, अपनी मनमोहिनी झाँकी दिखाकर मुझे कृतार्थ करें। इनकी निरन्तर उत्कट अभिलाषाको देखकर कई बार प्रभुने सन्त-वेशमें आकर इन्हें दर्शन दिया, पर ये भगवान्‌को पहचान न सकीं। जब इनकी व्याकुलता अधिक बढ़ गयी तो फिर श्रीठाकुरजी एक सन्तका रूप धारण करके आये। आपने बड़े प्रेमसे उन्हें भोजन कराकर पूछा—महाराज! कृपा करके यह बतलाइये कि इस युगमें भगवान्‌के दर्शन कभी किसीको होते हैं अथवा नहीं। सन्तरूपधारी प्रभुने कहा—'होते हैं, अवश्य होते हैं। आपको भी कई बार हो चुके हैं। एक बार बहुत-से पक्वान्नोंको तुम परोसती गयीं, वे खाते चले गये, न उनको तृप्ति होती थी और न तुम्हारा भण्डार घटता था। तब तुम्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। दूसरी बार तुम्हारी नाड़ी देखी और तुम्हें औषधि दी।' इन रहस्यमयी बातोंको सुनकर दमाबाई समझ गयीं कि ये भगवान् ही हैं, फिर इन्होंने पूछा कि इन गुप्त बातोंका आपको कैसे पता है? यह कह आपने आगे बढ़कर सन्त-वेशधारी भगवान्‌का हाथ पकड़ना चाहा, तभी वे अन्तर्धान हो गये। अब इन्हें विरह व्याप गया। व्याकुल होने, तड़पने और विलाप करने लगीं तो भगवान्‌ने स्वप्नमें दर्शन देकर सन्तुष्ट किया और समझाया कि मैं तुमसे दूर नहीं हूँ। तुम्हारी सन्त-सेवासे सन्तुष्ट हूँ। अमृतमयी प्रभुकी वाणीसे इन्हें परमानन्द हुआ।

श्रीलालीजी

श्रीलालीजीका स्वभाव अत्यन्त सरल था और साधु-सेवामें उन्हें बड़ी प्रीति थी। एक बार इनके पुत्रकी मृत्यु हो गयी। उस समय इनकी सन्त-भक्तिकी परीक्षा लेनेके लिये भगवान् एक सन्तका वेष धारण करके आ गये। सन्तको आया देखकर ऐसी प्रसन्नता हुई कि उससे पुत्र-मृत्युका दुःख विस्मृत हो गया। झट उन्होंने पुत्रके शवको छिपा दिया और सन्तकी सेवामें उपस्थित हो गयीं। आसनपर बैठाकर लालीजीने पूछा—'महाराज! आप रसोई अपने हाथसे स्वयं बनायेंगे अथवा मेरे श्रीठाकुरजीका प्रसाद ग्रहण करेंगे। भगवान्‌ने कहा—'हम तो तुम्हारे ही हाथसे बना प्रसाद पायेंगे।' श्रीलालीजी भोजन बनाने लगीं। इतनेमें भगवान् लालीके पतिका रूप धारण करके आये और उसे फटकारने लगे कि—'यह क्या? घरमें लड़का मरा पड़ा है और तू इस मुड़ियाके लिये पकवान बना रही है। तुझे न मेरा भय है और न लोक-मर्यादाका।' श्रीलालीजीने बड़ी नम्रतासे कहा—पुत्रका संस्कार तो बादमें भी हो जायगा। परंतु यदि सन्त लौट गये तो इनका आना सम्भव नहीं। सन्त-भगवन्त तो लोक-मर्यादासे अतीत होते हैं। यह सुनकर सन्तरूपधारी प्रभुने कहा—क्या तुम्हारे पुत्रकी मृत्यु हो गयी है? बताओ, वह कहाँ है? मेरे पास एक जड़ी है, उससे मृतक भी जीवित हो जाता है। आज्ञा मानकर लालीजीने पुत्रका शव लाकर दिखाया। प्रभुने झट उसे जीवित कर दिया और बोले—अब तो मैं स्नान करने जा रहा हूँ। बादमें प्रसाद लूँगा। ऐसा कहकर वे चले गये फिर लौटकर वापस आये ही नहीं। जब लालीजीके पतिदेव आये तो रहस्य खुला। इस प्रकार भगवान्‌ने आकर दर्शन दिया और पुत्रको जीवित किया। इस अहैतुकी भगवत्कृपाका अनुभव करके सभीको अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

श्रीनीराजी

श्रीनीराबाई भक्त अंगदकी धर्मपत्नी थीं। श्रीअंगदजीका चरित्र छन्द ११३ में वर्णित है। जब श्रीअंगदजी श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करके राजाके बुलानेपर घर आये। तब आनन्दमग्न होकर उन्होंने हीरा धारण किये श्रीजगन्नाथजीकी शोभाका खूब वर्णन किया। उसे सुनकर भक्तिमती श्रीनीराबाईके मनमें भी प्रभु-दर्शनकी तीव्र लालसा जग उठी। विरह व्याप गया, आँखोंसे निरन्तर अश्रुधारा बह रही थी। उत्कट प्रेममयी उत्कण्ठा देखकर भगवान् पुरुषोत्तम प्रकट हो गये। पतिमुखसे वर्णित सुन्दर रूपमाधुरीका दर्शनकर श्रीनीराजी कृतार्थ हो गयीं और विनती करने लगीं। इसी बीच वहीं श्रीअंगदजी भी आ गये। उन्होंने भी दर्शन किया। भगवान्ने कहा—'तुम्हारी भक्ता पत्नीको दर्शन देनेके लिये मैं पुरुषोत्तमपुरीसे आया हूँ। इनके विशाल प्रेमजालने मुझे खींच लिया।' तब श्रीअंगदजीने हाथ जोड़कर कहा कि इस भक्ताको धन्य है, जिसके प्रेमवश आपने पधारकर मुझे भी दर्शन दिया। इस प्रकार प्रभु भक्त-दम्पतीको कृतार्थकर अन्तर्धान हो गये।

श्रीखीचनीजी

खीची जातिमें उत्पन्न होनेके कारण आपका 'खीचनी' यह नाम पड़ गया था। एक राजाके साथ आपका विवाह हुआ था। आपका सन्तोंके चरणोंमें बड़ा-भारी प्रेम था। एक बार खीचनीजीने सुना कि अमुक गाँवमें सन्तजन पधारे हैं। उनका नाम सुनकर इन्होंने अनेक पक्वान्न बनाये और एक दासीके हाथ भेज दिये। साथमें एक लड़केको भी भेजा। दासी सन्तोंको पक्वान्न और भेंट देकर वापस लौटी। मार्गमें लुटेरोंने लड़केको मारकर भगा दिया और दासीको पकड़कर ले गये। लड़केने आकर समाचार सुनाया तो राजाको रानीपर क्रोध आ गया। वह रानी खीचनीको डाँटने लगा—मुण्डे-वैरागियोंकी सेवामें मेरी दासी क्यों भेजी? वह बड़ी सुन्दर, चतुर और मुझे प्यारी थी। अब वैसी दासी कहाँ मिलेगी? हो सकता है कोई वैरागी ही उसे उड़ा ले गया हो? ऐसे वाग्वाणोंसे रानीका हृदय घायल हो गया। सन्त-निन्दा उससे सही नहीं जा रही थी, अब तो वह श्रीठाकुरजीसे प्रार्थना करने लगी कि 'प्रभो! किसी तरह सन्तोंकी प्रतिष्ठा हो, राजाके मनमें भी सन्तोंके प्रति प्रेम हो।' करुण-पुकार सुनकर सन्त-सेवासे सन्तुष्ट भगवान्ने दासीको लाकर राजमहलमें खड़ा कर दिया। दासीने राजासे कहा कि मैं घने वनसे यहाँ कैसे आ गयी, मुझे भी पता नहीं! रानी खीचनीके आनन्दका ठिकाना नहीं रहा। राजाके मनमें भी सन्त और भगवन्तके प्रति श्रद्धा हो गयी। वह भी सेवा करने लगा।

श्रीकेशीबाईजी

श्रीकेशीबाईजी भक्त श्रीखोजीजीकी धर्मपत्नी थीं। खोजीजीके भावानुकूल श्रीकेशीबाईका भी सन्त-सेवामें बड़ा प्रेम था। आप बड़ी श्रद्धा एवं सावधानीसे सन्त-सेवा करती थीं। एकबार सर्दीके समयमें आपके यहाँ कई सन्तोंका शुभागमन हुआ। कपड़ोंकी कमीसे उन्हें ठिठुरता हुआ देखकर आपने अपने पतिदेवसे कहा कि इन सन्तोंके लिये वस्त्रोंका प्रबन्ध कीजिये। श्रीखोजीजीने कहा कि इस समय मेरे पास धनका अभाव है, अत: यदि तुम अपने आभूषण दे दो तो उन्हें बेंचकर सन्तोंको वस्त्र दिये जा सकते हैं। स्त्रियोंको आभूषणोंसे मोह रहता है, पर इन्हें तो सन्त-सेवामें प्रेम था, अत: बड़ी प्रसन्नतासे इन्होंने अपने आभूषण देकर सन्तोंके लिये वस्त्र बनवाये। ऐसी निष्ठाके कारण इनपर सदा प्रभुकी कृपा रहा करती थी।

श्रीबाँदररानीजी (मोहनदासी)

श्रीबाँदररानीजीका नाम मोहनदासी था और ये स्वामी हरिदासजीकी शिष्या थीं। ये बन्दरोंको चने चुगाकर उनका पालन करती थीं, अत: इनका बाँदररानी यह उपनाम प्रसिद्ध था। भक्तदामगुणचित्रणीमें इन्हें लाखा भक्तकी धर्मपत्नी कहा गया है। यथा—

सुनहु नारि जो बाँदर रानी। सो बाँदर की तिया बखानी॥
लाखा नाम भक्त की नारी। जाको सन्त सेव अति प्यारी॥

श्रीबाँदररानीका जो मूलमें नाम आया है, वे (छ० १०७) वानरवंशी श्रीलाखाजीकी धर्मपत्नी थीं। इन्हें सन्त-सेवा बहुत प्यारी थी। इनके पतिदेवने जब दण्डवत् करते हुए श्रीजगन्नाथजीकी यात्रा की। तब घरमें रहकर आपने सन्त-सेवा शुरू रखी। श्रीलाखाजी कुछ दिनोंतकके लिये सामानका संग्रह कर गये थे। जब वह समाप्त हो गया तो बाँदररानीने आभूषण बेंचकर सन्त-सेवा की। उसके बाद घरके बर्तन बेंच दिये परंतु सन्त-सेवामें कमी नहीं आने दी। उनके बाद अन्नकी कमीका अनुभव होने लगा। अब साधु-सेवा कैसे होगी, इस बातकी बड़ी-भारी चिन्ता हुई। जो अपने धर्ममें दृढ़ है, उसके धर्मकी रक्षा भगवान् करते हैं। भगवान्ने एक राजाको स्वप्न दिया कि लाखा भक्तकी स्त्रीके पास खर्चेकी कमी हो गयी है, अतः साधु-सेवाके लिये तुम उन्हें अन्न-धन दो। राजाने प्रातःकाल होते ही स्वप्नका स्मरण किया और अपना सौभाग्य मानकर बहुत-सा सामान लाखाजीके घरको भेज दिया। इस प्रकार बाँदररानीकी सेवा-निष्ठासे निरन्तर सेवा चलती रही। भक्तमाल छन्द १०४ में लाखाजीकी पत्नीका नाम 'जेवा' लिखा गया है। चरित्रमें कोई अन्तर नहीं है।

गंगा-जमुनाबाई

सुनौ संत हरि कृपा प्रगट संसार दिखाई।
जमन त्रास ते छुटीं गंग जमुना द्वै बाई॥
सदन घेरि बैठारि जमन दुष्टता बिचारी।
धर्‍यौ सिंह कौ रूप कृष्ण जन के हितकारी॥
जमन मृत्यु लखि पग पर्‍यौं अबलन प्रभु रक्षा करैं।
निकट सदाई स्याम घन अपने जन के साँकरे॥

—चाचा श्रीहितवृन्दावनदास

सोलहवीं शताब्दीमें इस देशमें मुसलमानोंका अत्याचार काफी जोरपर था। उस समय एक मुगल सरदारने कामवनपर चढ़ाई की और गाँवों को खूब लूटा। इस लूट-खसोट और भीषण हत्याकाण्डमें गंगा-यमुना दो असहाय लड़कियोंको भी अपने घर और कुटुम्बसे हाथ धोना पड़ा। इस समय इनकी अवस्था ९-९ वर्षकी थी। ये जंगलमें भाग छिपी थीं। इसीसे इनके प्राण बच गये।

प्रभुकी लीला विचित्र है। जिस समय गंगा-यमुना जंगलमें अकेली भूखसे रो रही थीं, उसी समय मनोहरदास नामक कोई ब्राह्मण वहाँसे निकला। उसे उन बालिकाओंपर दया आयी और वह इन्हें मथुरा ले आया।

मनोहरदासने उन दोनों बालिकाओंको नृत्य-गानकी अच्छी शिक्षा दी और पाँच वर्षोंमें उन्हें इस कलामें निपुण कर दिया। अब वह इन्हें जगह-जगह नचाकर इनसे पैसे कमाने लगा। गंगा-यमुना दोनों अत्यन्त सुन्दरी थीं। अतः मनोहरदासको खूब धन मिलता, किंतु ***'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई'*** वह इनसे अधिक-से-अधिक रुपया कमाना चाहता था। इसलिये उसने इन्हें बेंचनेका विचार किया। एक दिन वह आगरेके किसी राजा मानसिंहके यहाँ इनका सौदा भी कर आया। सौदा दो हजार रुपयोंका हुआ। पापका फल शीघ्र मिल जाता है। मनोहरदास सौदा करके आया और कन्या-विक्रयके ही पापसे दूसरे दिन मर गया। मरते समय वह अपना गुप्त धन इन कन्याओंको बता गया।

अस्तु, अबतक गंगा-यमुना अपने गुणके लिये प्रसिद्ध हो गयी थीं। उनकी नृत्य-कला और गायनका आनन्द लेनेके लिये श्रीवृन्दावनके एक वृद्ध संत श्रीपरमानन्ददासजी कभी-कभी मनोहरदासके यहाँ आया करते। उनसे गंगा-यमुनाका परिचय और प्रेम था। मनोहरदासके मरनेपर दोनों बहनें बाबा श्रीपरमानन्ददासजीके आश्रयमें चली आयीं। अब उन्हें इस नृत्य-गायनसे घृणा हो चुकी थी और संत-संगके प्रभावसे स्वाभाविक ही भजनमें उनकी रुचि हो गयी थी। धीरे-धीरे उनका मन इस संसारके विषयोंसे उपरत हो गया।

अब दोनों बहनोंने वैष्णवी-दीक्षा ग्रहण करनेकी प्रार्थना की। बालिकाओंकी सच्ची जिज्ञासा देखकर श्रीपरमानन्ददासजीने उन्हें अपने गुरुदेव गोस्वामी श्रीहितहरिवंशचन्द्रके शरणापन्न करा दिया। वैष्णवी दीक्षा लेकर गंगा-यमुना दोनों श्रीठाकुरजीकी सेवा, नाम-जप और पाठ-भजन आदि बड़ी प्रीतिसे करने लगीं। इनके पास जो मनोहरदासकी सम्पत्ति थी, उसे साधु-संतोंकी सेवामें लगाने लगीं। इससे उन्हें अत्यधिक आनन्द मिलता।

इस प्रकार कितने ही दिन बीतनेके पश्चात् उनके जीवनमें एक उपद्रव आया। गंगा-यमुनाके रूप-लावण्यकी चर्चा तो सर्वत्र थी ही, मथुराके हाकिम अजीज़बेगने भी सुनी। उसने जाकर इन्हें देखा भी। तब तो मानो उसकी छातीपर साँप-सा लोटने लगा। अजीज़बेगने चुपकेसे दूसरे दिन गंगा-यमुनाकी कुटियाके आस-पास घेरा डाल दिया और जब रात्रिके समय उनकी कुटियापर आया, तब उसने वहाँ एक सिंहको रखवाली करते पाया। सिंहने गर्जना करके उसे खूब डराया भी। वह भागा अपने घर आया। डरके मारे उसे ज्वर आ गया। कई बार मूर्छा भी हुई। सारी रात बड़े कष्टसे बीती।

यह सब तो हुआ, पर गंगा-यमुनाको इस बातका कि कोई आया भी था, पतातक न चला। वे तो संतोंके संगमें बैठी हरिगुणगान करती रहीं। सबेरा होनेपर अजीज़बेग गंगा-यमुनाके पास आया और उन्हें माता शब्दसे सम्बोधित करके उसने अपना अपराध क्षमा कराया। उसीने उन्हें सिंहकी कथा भी सुनायी तथा बहुत-सा द्रव्य भेंट किया। किंतु—

इन वाकौ धन हाथ न छुयौ। हरि भक्तनि हित सिच्छित कियौ॥

इन्होंने उसके धनको छुआ नहीं और और संतोंकी सेवामें लगा देनेका उपदेश दिया। इससे अजीज़बेगकी श्रद्धा और बढ़ गयी। उसने बार-बार इनकी चरण-रज ली, तब इन्होंने उसे आदरके साथ विदा कर दिया।

इन दोनों भक्तिमती बहनोंके विषयमें भक्तमालकार श्रीगोविन्द अलिजीने लिखा है—

हीन कुली वपु धार सार हितजू ते पायौ।
जैसे पारस परस लोह ते हेम कहायौ॥
दास मनोहर वास गृह परमानँद के संग।
कुंजमहल में प्रगट ह्वै गावति तान तरंग॥
इहि बिधि जुगल रिझाय कै बसीं बिपिन में आइ।
गंगा जमुना की कथा सुनहु रसिक चित लाइ॥

श्रीकान्हरदासजी

श्रीगुरु सरनै आय भक्ति मारग सत जान्यो।
संसारी धर्म छाँड़ि झूँठ अरु साँच पिछान्यो॥
ज्यों साखा द्रुम चंद जगत सों इहिं बिधि न्यारो।
सर्बभूत समदृष्टि गुननि गंभीर अति भारो॥
भक्त भलाई बदन नित, कुबचन कबहूँ नहिं कह्यो।
कन्हरदास संतनि कृपा हरि हिरदै लावो लह्यो॥ १७१॥

श्रीकान्हरदासजीने सन्तोंकी कृपासे यह महान् लाभ प्राप्त किया कि अपने हृदयमें भगवान्‌को स्थापित किया। इन्होंने गुरुदेवकी शरणमें आकर भक्तिमार्गको सच्चा, सात्त्विक, सरल और श्रेष्ठ जाना। आपने संसारी धर्मको त्यागकर क्या सत्य है और क्या झूठ है, इस बातको पहचाना और सत्‌का ग्रहण तथा असत्‌का

त्याग किया। भगवद्धर्मको स्वीकार किया। आप संसारसे उसी प्रकार अलग रहे, जैसे पेड़की शाखासे चन्द्रमा अलग और दूर रहता है, लेकिन दिखानेके लिये पेड़के पासमें बताया जाता है। आप संसारके सभी प्राणियोंको समान दृष्टिसे देखते थे। अनेक सद्‌गुणोंसे युक्त थे। अतः आप महान् थे। आपने अपने मुखसे सदा सज्जनों-भक्तोंकी प्रशंसा की। मिथ्या, कटु और परनिन्दारूप कुवचन आपने कभी नहीं कहे॥ १७१॥

श्रीकान्हरदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीकान्हरदासजी समदर्शी सन्त थे। किसी सन्तसे कोई भूल भी हो जाय तो श्रीकान्हरदासजी कटु शब्दोंका प्रयोग नहीं करते थे। आप सन्तसेवी तो थे ही, अतः सन्तोंका आवागमन बना ही रहता था। एक बार दो सन्त आये, वे कई दिनोंसे भूखे थे। जितना प्रसाद था, उन्हें दिया गया। उसे पाकर तृप्त न हुए अतः उन्होंने कान्हरदासजीके घरसे एक धातुपात्र ले जाकर हलवाईके हाथ बेंच दिया और दोनोंने भरपेट लड्डू-पेड़ा खाया। यह जानकर आपका शिष्य सन्तोंको फटकारने लगा। उस अज्ञानी शिष्यको आपने समझाया, कि सन्त बर्तन बेचकर खा गये तो अपना ही खाये।

सब सामग्री राम की सन्त राम के राम। जो चाहैं सोई करैं तू बोलत बेकाम॥

इस प्रकार आपकी सन्तनिष्ठा अद्भुत थी।

एक बार श्रीकान्हरदासजीको बड़े जोरसे बुखार चढ़ आया। तब ये आसनपर पड़े-पड़े ही प्रभुकी मानसी-सेवा करने लगे। भोग लगनेके बाद प्रभुने इनसे कहा कि तुम भी यह प्रसाद लो। तब आपने शिष्यको जोरसे पुकारकर कहा—अरे! प्रसाद लेनेके लिये शीघ्र ही पात्र लाओ। शिष्यने सोचा कि ज्वरकी अधिकताके कारण कुछ बक रहे हैं। अतः पात्र न लाकर खड़ा ही रहा। तब फिर आपने डाँटकर कहा कि शीघ्र कटोरा लाओ। तब वह कटोरा ले आया। इनके हाथोंमें आते ही कटोरा भर गया। तब सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसमेंसे जिसने-जिसने प्रसाद लिया। सभीको अद्भुत स्वाद और परमानन्द मिला। ऐसे भगवत्प्राप्त सन्त थे श्रीकान्हरदासजी!

श्रीकेशवजी लटेरा और श्रीपरशुरामजी

कहनी रहनी एक एक प्रभु पद अनुरागी।
जस बितान जग तन्यो संत संमत बड़भागी॥
तैसोइ पूत सपूत नूत फल जैसोइ परसा।
हरि हरिदासनि टहल कबित रचना पुनि सरसा॥
(श्री) सुरसुरानंद संप्रदा दृढ़ केसव अधिक उदार मन।
लट्‌यो लटेरा आन बिधि परम धरम अति पीन तन॥ १७२॥

श्रीकेशवदासजी लटेरा आचार-विचारका जैसा उपदेश देते थे, उसीके अनुसार स्वयं आचरण भी करते थे। प्रभुके श्रीचरणोंमें आपका अनन्य प्रेम था। सारे संसारमें आपकी कीर्ति फैली हुई थी। सन्तोंकी सम्मति आपके साथ थी, अतः आप बड़भागी थे। जैसे निष्ठावान् सन्तसेवी भक्त श्रीकेशवजी थे, वैसे ही उनके सुपुत्र श्रीपरशुरामजी भी थे। श्रीकेशवरूप कल्पवृक्षके अनोखे, सन्तोंसे प्रशंसनीय फल श्रीपरशुरामजी थे। ये भगवान् और उनके भक्तोंकी प्रेमसे सेवा करते थे तथा सरस पदोंकी रचना भी करते थे। ये आचार्य श्रीरामानन्द स्वामीके शिष्य श्रीसुरसुरानन्दजीके शिष्य थे। अपने सम्प्रदायकी पद्धतिके कट्टर अनुयायी और परम उदार हृदयके थे। ये महोत्सव आदि वैष्णवधर्मके पालन करनेमें परम पुष्ट और विवाह आदि संसारी कार्योंके लिये अत्यन्त दुर्बल थे अर्थात् बहुत कम खर्च करते थे॥ १७२॥

श्रीकेशवदासजी लटेराके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीकेशवदासजी शरीरसे तो दुर्बल थे, पर इनकी भक्ति अति सबल थी। एक बार एक सन्तने महोत्सव किया और अपनी ठकुरानीका विवाह श्रीलटेराजीके लालजीके साथ किया। सन्तजनोंको साथ लेकर आप बारातमें गये। वहाँ खूब स्वागत-सत्कार हुआ, फिर विदाई हुई। दहेजके रूपमें बहुत-सा अन्न-धन-सामान मिला। उसे गाड़ियोंमें भरकर तथा पालकीमें लाड़िलीलालको पधराकर ले चले। रास्तेमें यवन सैनिकोंने इन्हें घेर लिया और पूछा कि गाड़ी और पालकीमें क्या है? श्रीलटेराजीने कहा हमारे लालजीको दहेजमें मिला सामान गाड़ीमें है और पालकीमें लाड़िलीलाल हैं। यवनोंने कहा—तुम लोग अपने प्राणोंको लेकर दूर भाग जाओ। यह सब सामान हमारे काम आयेगा। इतना कहकर वे लोग गाड़ी और पालकीमें देखने लगे कि क्या है। आवरण हटाते ही उन्हें सिंहकी गुर्राहट सुनायी पड़ी। ऐसा लगा कि इसमें सिंह और बाघ भरे हैं। भयभीत होकर भागे तब श्रीलटेराजीने कहा—भयभीत मत होओ। चाहो तो सामान ले जाओ। यवनोंने सन्तोंकी करामात देखी तो भेंट-पूजा देकर माफी माँगकर चले गये। सानन्द बारात आश्रममें पहुँची तो वहाँ एक सन्त आपके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वे बोले कि हमारे यहाँ भण्डारा है, उसमें आप कुछ सहायता कीजिये। यह सुनकर बड़ी प्रसन्नताके साथ सारा दहेजका सामान श्रीलटेराजीने उस सन्तके यहाँ भेज दिया। सन्तोंको सन्तुष्ट करना इनका प्रधान लक्ष्य था।

श्रीकेवलरामजी

भक्ति भागवत बिमुख जगत गुरु नाम न जानैं।
ऐसे लोक अनेक ऐंचि सनमारग आनैं॥
निर्मल रति निहकाम अजा तें सदा उदासी।
तत्त्वदरसि तम हरन सील करुना की रासी॥
तिलक दाम नवधा रतन कृष्न कृपा करि दृढ़ दिया।
'केवलराम' कलिजुगा के पतित जीव पावन किया॥ १७३॥

श्रीकेवलरामजीने साधनपथभ्रष्ट अनेक (सिन्ध-देशके) पतित जीवोंका उद्धार किया। जो लोग भक्त, भगवान्, वैष्णवधर्म और गुरुओंसे विमुख थे, इन सबकी निन्दा करते थे, इनकी महिमासे सर्वथा अपरिचित थे, ऐसे अनेक नारकी लोगोंको खींचकर भक्तिमार्गमें लाये। भगवान्‌में आपका निष्काम प्रेम था। माया एवं मायिक जगत्‌से आप सर्वथा उदासीन थे। शास्त्रोंका अध्ययन करके आपने भगवत्-तत्त्वको जान लिया था, अतः अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करनेमें आप समर्थ हुए। आप सत्य, सदाचार और करुणाके निधान थे। आपने तिलक, कण्ठी, नवधा भक्तिरत्न और श्रीकृष्णकी कृपाको श्रीकृष्णकी कृपासे लोगोंके मनमें दृढ़तासे स्थापित करके पतित जीवोंको पवित्र किया॥ १७३॥

श्रीकेवलरामजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीकेवलरामजी सबके घरोंमें, द्वारोंपर जाकर यही कहते कि आपलोग कृपा करके हमको यह दान दें कि 'सदा मन लगाकर भगवान् श्रीकृष्णकी सेवा कीजिये और उनके नामका जप कीजिये।' एक बार आपने दस-बीस ऐसे अनाचारी देखे, जिनका वेश तो वैष्णवोंका-सा था, परंतु आचरण दुष्टोंका-सा था। उनपर दया करके आपने उन्हें भगवान् शालग्रामकी मूर्तियाँ, मन्त्र, गोपीचन्दन, तुलसी-मालाएँ दीं और सेवा-पूजाकी विधि सिखा दी। वे सब सच्चे सदाचारी वैष्णव बन गये। करुणानिधान तो आप ऐसे थे कि संसारमें आप-सरीखा दूसरा कहीं नहीं देखा-सुना गया। एक बार किसी बनजारेने आपके सामने बैलको जोरसे डण्डा

मारा। दयावश आपको उसकी पीड़ाका ऐसा अनुभव हुआ कि आप उसी क्षण धरतीपर गिर गये। डण्डेका निशान आपकी पीठपर उभर आया। इसे तन और मनकी सच्चाई कहते हैं। श्रीकेवलरामजी तदाकार हो गये थे, उन्होंने बैलके और अपने शरीरमें भेद नहीं माना, उसके कष्टको अपना माना। (ऐसा तादात्म्य देखकर बनजारा भी वैष्णव बन गया।) ऐसी दयालुताका वर्णन वाणीसे समझकर कैसे किया जाय। महापुरुष ही अनुभव करके जान सकते हैं।

श्रीप्रियादासजीने श्रीकेवलरामजीकी दयालुताका एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

घर घर जाय कहैं यहै दान दीजै मोकों कृष्ण सेवा कीजै नाम लीजै चित लायकै।
देखे भेषधारी दस बीस कहूँ अनाचारी दये प्रभु सेवनि कों रीति दी सिखायकै॥
करुणानिधान कोऊ सुने नहीं कान कहूँ, बैल के लगायौ साँटौ लोटे दया आयकै।
उपट्यो प्रगट तन मन की सचाई अहो, भए तदाकार कहौं कैसे समुझायकै॥ ६००॥

श्रीआसकरनजी

धर्मसील गुनसींव महाभागवत राजरिष।
पृथीराज कुलदीप भीमसुत बिदित कील्ह सिष॥
सदाचार अति चतुर बिमल बानी रचना पद।
सूर धीर ऊदार बिनय भलपन भक्तनि हद॥
सीतापति राधा सुबर भजन नेम कूरम धर्‌यो।
(श्री) मोहन मिश्रित पद कमल आसकरन जस बिस्तर्‌यो॥ १७४॥

राजर्षि भक्त श्रीआसकरनजी धर्म, शील और सद्‌गुणोंकी सीमा थे। आप आमेरनरेश श्रीपृथ्वीराजके पौत्र, श्रीभीमसिंहजीके पुत्र और स्वामी श्रीकील्हदेवजीके शिष्य थे। ये सदाचारका पालन करनेमें परम चतुर थे। आपकी वाणी निर्मल थी, आपने अनेक पदोंकी रचना की। आप शूरवीर, धीर, गम्भीर, उदार, विनयी, बड़प्पन आदिसे युक्त तथा भक्तोंमें श्रेष्ठ थे। कूर्मवंशीय श्रीआसकरनजी सीतापति श्रीरामचन्द्र और राधापति श्रीकृष्णचन्द्र—दोनोंकी नियमपूर्वक सेवा (भजन) करते थे। जिन दोनों ठाकुरोंके नाममें मोहन शब्द जुड़ा है, ऐसे श्रीजानकीमोहन और श्रीराधामोहन—इन दोनों इष्ट स्वरूपोंके श्रीचरणकमलोंकी आशा करनेवाले श्रीआसकरनजीका सुयश सर्वत्र फैल गया॥ १७४॥

राजर्षि आसकरनजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

मनुष्योंमें श्रेष्ठ श्रीआसकरनजी नरवरगढ़के राजा थे। आप मनमोहन भगवान्‌को मनमें धारण करके चार घण्टेतक लगातार मन्दिरमें रहकर प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करते थे। उस समय द्वारपर चौकीदारको बैठा देते। कोई भीतर जाने नहीं पाता। इस प्रकार आपकी बुद्धि सेवामें भलीभाँति रम गयी थी। एक बार किसी आवश्यक कार्यसे नरवरगढ़में दिल्लीका बादशाह आया और उसने अपने सेवकोंसे कहा कि 'आसकरनजीको शीघ्र ही लिवा लाओ।' वे लोग आये तो उस समय ये मन्दिरमें थे, अतः बादशाहके दूतोंकी बात यहाँ किसीने नहीं सुनी। पहरेदारोंने आसकरनजीको सूचना देनेसे इनकार कर दिया। तब बादशाहने अपनी आज्ञाका उल्लंघन मानकर बड़ी भारी सेना भेज दी। सेनापतिने आकर कहा 'मेरे आनेकी सूचना राजा आसकरनके पास भेजो।' इस बातको सुनकर भी लोगोंने टाल दिया। सेवामें विघ्न-भयसे सूचना न दी। अब क्या होगा, यह विचारकर लोगोंके मनमें बड़ी घबड़ाहट पैदा हो गयी।

बादशाहके सेनापतिने बादशाहके पास सूचना भेजी कि 'हमारे कहनेसे भी कोई राजाको खबर नहीं पहुँचा रहा है, आपकी आज्ञा हो तो मैं युद्ध छेड़ दूँ।' यह सुनकर बादशाहके मनमें रुचि उत्पन्न हुई कि राजा कैसा सेवानिष्ठ है, चलकर देखना चाहिये। अब बादशाह स्वयं ही वहाँ आया। तब सभी राजकर्मचारी बड़े सोच-विचारमें पड़ गये कि अब क्या करना चाहिये। उन लोगोंने बादशाहसे कहा—हम राजाकी आज्ञाका उल्लंघन करके वहाँ नहीं जा सकते हैं और न कुछ सूचना ही दे सकते हैं। आप चाहें तो अकेले जा सकते हैं। बादशाह भीतर गया तो उसे वहाँका दृश्य देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उस समय श्रीआसकरनजी भगवत्सेवा पूरी करके भूमिपर लेटकर साष्टांग दण्डवत्प्रणाम कर रहे थे। बादशाह खड़ा देखता रहा, बड़ी देर हो गयी फिर भी ये न उठे। तब बादशाहने राजा आसकरनके पैरमें तलवार मारी, इससे राजाकी एड़ी तो कट गयी, परंतु उनकी भौंह भी टेढ़ी नहीं हुई अर्थात् कष्टका किंचित् अनुभव नहीं हुआ। नित्य-नियमके अनुसार राजाने बड़ी शान्ति एवं धैर्यके साथ सब कार्य सम्पन्न किया। इस प्रकार राजाने अपना अद्भुत धैर्य दिखलाया।

श्रीआसकरनजी भगवान्‌को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करके उठे और उन्होंने चिक (परदा) डाल दिया। पश्चात् मुड़कर पीछे देखा तो बादशाह दिखायी पड़ा। तब इन्होंने शिष्टाचारके अनुसार उसे जोहार (सलाम) किया। राजाकी भगवत्सेवामें नियम-निष्ठाको देखकर बादशाह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। प्रेमकी सच्चाई यही है कि उसमें थोड़ी भी शिथिलता या बनावटीपना न हो। इसके बाद बादशाहने श्रीआसकरनजीसे प्रेम-नेमके सम्बन्धमें कुछ बातचीत की और इनके विचार सुनकर वह बहुत ही खुश हुआ। उसका हृदय भक्ति-रससे सराबोर हो गया। कुछ दिनोंके बाद श्रीआसकरनजी शरीरको त्यागकर भगवद्धाम चले गये। यह सुनकर बादशाहको बहुत कष्ट हुआ। फिर कुछ दिनोंके बाद उसने सुना कि सेवा-पूजा और भोग-रागके अभावमें श्रीठाकुरजी कष्ट पा रहे हैं। तब उसने सेवा-पूजा करनेवाले ब्राह्मणोंको अलग-अलग गाँव लिख दिये और उन पुजारियोंको आदेश दिया कि आसकरनजीके प्राण-प्यारे ठाकुरजीकी सेवा-पूजा आपलोग बड़े प्रेम-नेमसे किया कीजिये। इस प्रकार भगवत्सेवाका यथोचित प्रबन्ध करके बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

नरवर पुर ताकौ राजा नरवर जानौ मोहन जू धरि हियै सेवा नीके करी है।
घरी दस मन्दिर में रहैं रहै चौकी द्वार, पावत न जान कोऊ ऐसी मति हरी है॥
पर्‍यो कोऊ काम आय अबहीं लिवाय ल्यावौ कहै पृथीपति लोग कान में न धरी है।
आई फौज भारी सुधि दीजिये हमारी, सुनि वहू बात टारी, परी अति खरबरी है॥ ६०१॥
कहिकै पठाई 'कहौ कीजियै लराई' सुनि रुचि उपजाई चलि पृथीपति आयौ है।
पर्‍यौ सोच भारी, तब बात यों बिचारि कही 'आप एक जावौ', गयौ अचरज पायौ है॥
सेवा करि सिद्धि, साष्टाङ्ग ह्वै कै भूमि परे, देखि बड़ी बेर, पाँव खडग लगायौ है।
कटि गई एड़ी, एपै टेढ़ीहू न भौंह करी करी नित नेम रीति धीरज दिखायौ है॥ ६०२॥
उठि चिक डारि, तब पाछें सो निहारि, कियौ मुजरा विचारि, बादशाह अति रीझे हैं।
हित की सचाई यहै नेकु न कचाई होत, चरचा चलाई भाव सुनि सुनि भीजे हैं॥
बीते दिन कोऊ नृप भक्त सो समायौ, पृथीपति दुख पायौ, सुनी भोग हरि छीजे हैं।
करैं विप्र सेवा तिन्हें गाँव लिखि न्यारे दिये वाके प्रान प्यारे लाड़ करौ कहि धीजे हैं॥ ६०३॥

गोसाईं विट्ठलनाथके दीक्षित शिष्य परम भगवदीय राजा आसकरण एक ऐसे ही सौभाग्यशाली जीव थे, जिन्हें भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं अपनी अनेक लीलाओंका साक्षात्कार कराया था।

भक्त आसकरनजीके सम्बन्धमें कुछ अन्य विवरण इस प्रकार प्राप्त होता है—

राजा आसकरन नरवरगढ़के राजा थे। सम्राट् अकबरके समकालीन थे। बाल्यावस्थासे ही भगवद्भक्तिकी माधुरी और संगीतकी सरसताके आस्वादनमें उनकी विशेष अभिरुचि थी। उनकी राजसभामें सुदूर प्रान्तोंसे कवि, कलाकार और गायक आया करते थे। एक बार संगीतसम्राट् तानसेन उनकी राजसभामें पहुँच गये। उनकी संगीत-माधुरीमें राजा आसकरन भाव-निमग्न हो गये और मन्त्रमुग्धकी तरह उनका विष्णुपद सुनने लगे। तानसेन गोविन्दस्वामीका पद गा रहे थे, भाव यह था कि शरद्-रात्रिकी दिव्य ज्योत्स्नामें श्रीकृष्ण राधाजीके साथ बैठकर रसभरी बातें कर रहे हैं, शीतल-मन्द-सुगन्ध समीर बह रहा था, कोयल मीठी बोली बोल रहे हैं तथा भौंरे नव निकुंजकी कलिकाओंका रसास्वादन कर रहे हैं। राजा आसकरन पद सुनते-सुनते ध्यानस्थ हो गये। वे तानसेनके साथ गोविन्दस्वामीका दर्शन करनेके लिये व्रज आये।

अपार समृद्धि, विशाल राजप्रासाद, असीम अधिकारपर लात मारकर राजा आसकरनने भगवान् श्रीकृष्णकी सभाके गायकसे मिलनेमें गौरवानुभूति की। गोकुल पहुँचकर तानसेनकी प्रेरणासे उन्होंने श्रीविट्ठलनाथसे दीक्षा ली। उनके साथ ही वे नवनीतप्रियके दर्शनके लिये गये। उस समय गोविन्दस्वामी नवनीतप्रियके सामने कीर्तन कर रहे थे। सावनका महीना था। मल्हारकी सरसता मन्दिरमें पूर्णरूपसे प्रवाहित हो रही थी। राजाने समझ लिया कि गोविन्दस्वामी ही गा रहे हैं। वे पदका भाव-चिन्तन करने लगे। नयन बन्द थे। राजाने ध्यानमें मग्न होकर देखा कि परम पवित्र कालिन्दीके तटपर श्रीराधाकृष्ण कुसुम-चयन कर रहे हैं। आकाशमें काली-काली घटाएँ उमड़ रही हैं। कुछ बूँदें भी पड़ने लगीं हैं। नन्दनन्दन राधारानीके साथ वंशीवटकी ओर जा रहे हैं, उनका पीत पट लहरा रहा है, रासेश्वरीकी नीली चूनरी चारों ओर झिलमिल-झिलमिल करती हुई अत्यन्त मोहिनी छटा बिखेर रही है। कितना मादक दृश्य था! राधारानीकी कृपामृत-लहरीसे आसकरनकी समाधि लग गयी। कुछ देरके बाद चेत होनेपर वे गोविन्दस्वामीसे मिले। वे जबतक व्रजक्षेत्रमें रहे, नित्य गोविन्दस्वामीके साथ रमणरेतीमें विचरण किया करते थे। कुछ दिनोंके बाद गोसाईंजीकी आज्ञासे नरवर लौट आये। गुरुने उनको मदनमोहनजीकी सेवा सौंपी थी। नरवर आनेपर उन्होंने राजकार्यका भार दीवानकी देख-रेखमें सौंप दिया, भगवान्‌की सेवामें उनके दिन बीतने लगे। उनकी मानसी सेवा सिद्ध थी। उनका मन राजपदसे ऊब गया था।

राजा आसकरनको राज्यसुख अधिक दिनोंतक मोहमें न रख सका। वे तो भगवान्‌के सच्चे भक्त थे। राजकार्य भतीजेको सौंपकर भगवान् श्रीकृष्णकी राजधानी वृन्दावनकी ओर चल पड़े। कुछ दिनोंतक गोकुलमें भी रहे। उन्हें समय-समयपर भगवान्‌की लीलाके प्रत्यक्ष दर्शन होने लगे। वे लीला-दर्शनके अनुरूप पद-रचना करके अपनी वाणीको भगवत्-रससे सींचने लगे।

एक बार राजा आसकरन स्नान करने जा रहे थे। भगवान्‌ने रमणरेतीमें वंशी बजायी। सलोने श्यामसुन्दर उस समय रंगोत्सवमें मस्त थे। होली खेल रहे थे। राजाने उनकी रंगभरी छवि-माधुरीके स्तवनमें गाया, धमारकी स्वरभरी मीठी ध्वनिसे लीलास्थलका एक-एक कण रसमय हो उठा। उनकी भारतीका कण्ठ खुल गया।

या गोकुल के चौहटे रँग राची ग्वाल।
मोहन खेले फाग.......॥

लीला तो समाप्त हो गयी, पर संगीतका क्रम चलता ही रहा। वे तीन दिनतक अचेत पड़े रहे। उन्हें भगवल्लीलाका साक्षात्कार हो गया था। गोसाईंजीने उन्हें स्वतन्त्रतापूर्वक व्रज-भ्रमणकी आज्ञा दे दी। वे उन्मत्त होकर भगवान्‌के यश-कीर्तन और लीला-गानमें दिन बिताने लगे। नयनोंमें भगवान्‌की छवि-वारुणीका ऐसा प्रभाव था कि कोटिप्रयत्न करनेपर भी वह न उतरता। खाने-पीनेकी कुछ भी चिन्ता नहीं रहती थी।

वे उच्चकोटिके रसिक भक्त थे। लीलारसामृतका पान ही उन्हें निश्चिन्त कर देता था। एक बार यशोदाजी अपने बाल-गोपालको दूध पिला रही थीं। सोनेके कटोरेमें औटा दूध लेकर ग्वाल-बालोंकी मण्डलीमें खेलते हुए घनश्यामको नन्दरानी दूध पीनेके लिये बार-बार बुला रही थीं। आसकरनजीके नयन इस पवित्र लीलाका दर्शन करके धन्य हो गये।

एक समय उन्हें भगवान्‌की शयन-लीलाका विचित्र दर्शन हुआ। उन्होंने देखा कि भगवान् निकुंजमें कोमल शय्यापर अपने नयनोंमें मीठी नींद भरकर ऊँघ-से रहे हैं, भगवान् सो नहीं रहे हैं। भक्तका हृदय विकल हो उठा, उन्होंने मीठी वाणीसे उनकी मनुहार करनी आरम्भ की—

तुम पौढ़ौ, हौं सेज बनाऊँ।
चाँप चरन, रहँ पायन तर, मधुर स्वर केदारौ गाऊँ॥
आसकरन प्रभु मोहन नागर यह सुख स्याम सदा हौं पाऊँ॥

भगवान् भक्तकी प्रसन्नताके लिये सो गये। आसकरन उनके मुखकी माधुरीमें लीन हो गये। इसी तरह उन्हें सदा भगवान्‌की लीलाके दर्शन होते रहते थे। राजा आसकरन वास्तवमें राजर्षि थे। वे भगवान्‌के लीलागायक, रसिक कवि और अनन्य भक्त थे।

श्रीहरिवंशजी

कथा कीरतन प्रीति संत सेवा अनुरागी।
खरिया खुरपा रीति ताहि ज्यों सर्बसु त्यागी॥
संतोषी सुठि सील असद आलाप न भावै।
काल बृथा नहिं जाय निरंतर गोबिंद गावै॥
सिष सपूत श्रीरंग को उदित पारषद अंस के।
निहकिंचन भक्तनि भजै हरि प्रतीत 'हरिबंस' के॥ १७५॥

श्रीहरिवंशजी परम निष्किंचन भक्त थे। सभी भक्तोंकी विशेषकर निष्किंचन भक्तोंकी बड़े प्रेमसे सेवा करते थे। जिस प्रकार द्वापरके एक घसियारेने मात्र खरिया-खुरपाका दान करके श्रेष्ठ लोक तथा प्रसिद्धि पायी। उसी प्रकार आपने भी अपना सर्वस्व भक्तोंकी सेवामें अर्पितकर 'सर्वस्व दानी' पद प्राप्त किया। आप परम सन्तोषी और अत्यन्त नम्र थे। झूठ बोलना और बुरी बात कहना आपको अच्छा नहीं लगता था। समयको व्यर्थ न बिताकर निरन्तर भगवान्‌के गुणोंको गाते रहते थे। आप श्रीरंगजीके सुपात्र शिष्य एवं पुत्र थे और भगवत्पार्षदोंके अंशरूपमें प्रकट हुए थे। भगवान्‌में आपका अटल विश्वास था॥ १७५॥

श्रीकल्याणजी

नवकिसोर दृढ़ब्रत अनन्य मारग इक धारा।
मधुर बचन मन हरन सुखद जानत संसारा॥
पर उपकार बिचार सदा करुना की रासी।
मन बच सर्बस रूप भक्त पद रेन उपासी॥
धर्मदास सुत सील सुठि (मन) मान्यो कृष्न सुजान के।
हरिभक्ति भलाई गुन गँभीर बाँटे परी कल्यान के॥ १७६॥

अगाध गुणोंसे युक्त भगवान्‌की भक्ति और भलाई श्रीकल्याणदासजीके हिस्से आयी। चंचल नदीकी धाराकी तरह आपकी चित्तवृत्ति निरन्तर नवकिशोर श्रीकृष्णचन्द्रकी ओर प्रवाहित रहा करती थी। आपकी अनन्य भावसे भजन करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा थी। आपके मधुर वचन मनोहर और सुखप्रद थे, इस बातको सभी लोग जानते थे। सदा दूसरोंके साथ उपकार करनेका विचार इनके मनमें रहता था। आप कृपा-करुणाके निधान थे। मन-वाणी और अपने समस्त धनसे भक्तोंके चरणोंकी रजकी उपासना करते थे। सुन्दर शीलवान् श्रीकल्याणदासजी श्रीधर्मदासजीके पुत्र थे और भक्तोंके मनकी बातोंको जाननेवाले श्रीकृष्णचन्द्रको परम प्रिय थे॥ १७६॥

श्रीकल्याणजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीकल्याणजी बड़े ही परोपकारी भगवद्भक्त थे। एक बार किसी ब्राह्मणने खेतीके लिये एक यवनसे कर्ज लिया। संयोगवश खेतीमें अन्न पैदा नहीं हुआ, इसलिये वह ब्राह्मण यवनके रुपये न चुका सका। यवनने जोर देकर तगादा किया और ब्राह्मणको परेशान करने लगा। श्रीकल्याणदासजीको मालूम पड़ा तो इन्होंने उस यवनका ऋण चुकाया और ब्राह्मणको संकटसे छुड़ाया। एक भक्तके पुत्रका विवाह था। उसने आकर श्रीकल्याणदासजीसे विनती की—मुझे दो सौ रुपये उधार दे दीजिये, व्याहके बाद शीघ्र ही मैं आपको दे दूँगा, यदि न दूँ तो आप पुत्र और पुत्रवधू दोनोंको ले लीजियेगा। वे आपके ठाकुरकी सेवा करेंगे। आपने दो सौ रुपये दे दिये। उसके पुत्रका विवाह हो गया। यथासमय जब आपने उससे रुपये माँगे। तब उसने कहा—मेरे पास तो एक पैसा भी नहीं है। यदि आप चाहो तो मुझे बेंचकर अपने रुपये वसूल कर लो। यह सुनकर श्रीकल्याणदासजीने उसकी परिक्रमा की और प्रणाम करके कहा कि बहुत अच्छा प्रभो! रुपये आपके ऊपर न्यौछावर हैं। ऐसे गम्भीर और उपकारी भाव देखकर प्रभु श्रीकृष्ण इनपर सन्तुष्ट हुए।

एक बार किसी सन्तने शरद्पूर्णिमाका महोत्सव किया। अपने मण्डलके सभी सन्तोंको निमन्त्रण दिया परंतु श्रीकल्याणदासजीको निमन्त्रण देना भूल गया। रातको स्वप्नमें श्रीठाकुरजीने उससे कहा—तुमने कल्याणदासको निमन्त्रण क्यों नहीं दिया? वह मेरा प्यारा भक्त है, उनके बिना आये उत्सव पूर्ण न होगा। स्वप्नमें आदेश पाकर उसने बड़े आदरसे इन्हें निमन्त्रण दिया और विशेष सत्कार किया। सर्वेश्वर भक्तमालके अनुसार श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजीके प्रमुख शिष्य श्रीकान्हरदेवजी हुए, उनके शिष्योंमें श्रीधर्मदासजी प्रसिद्ध सन्त हुए। श्रीकल्याणदासजी इन्हींके कृपापात्र शिष्य थे।

श्रीबीठलदासजी

आदि अंत निर्बाह भक्त पद रज ब्रतधारी।
रह्यो जगत सों ऐंड़ तुच्छ जानै संसारी॥
प्रभुता पति की पधति प्रगट कुल दीप प्रकासी।
महत सभा मैं मान जगत जानै रैदासी॥
पद पढ़त भई परलोक गति गुरु गोबिंद जुग फल दिया।
बिठलदास हरि भक्ति के दुहूँ हाथ लाड़ू लिया॥ १७७॥

श्रीबीठलदासजीने भगवद्भक्तिके दोनों फलों (लोकमें सन्तसेवा और परलोकमें प्रभुसेवा)-को प्राप्त किया। आपने आदिसे अन्ततक अर्थात् जीवनभर भक्तोंकी चरणरजको प्रतिज्ञापूर्वक सिरपर धारण किया अर्थात् सब प्रकारसे सन्तोंकी सप्रेम सेवा की। अहंकारी धनिकों और विमुखोंको आपने तुच्छ जाना, कभी उनकी खुशामद नहीं की। सर्वदा भगवद् बलपर उनसे ऐंठकर ही चलते थे। आप प्रभुताके पतिकी पद्धतिमें (अर्थात् श्रीसम्प्रदायमें श्रीरैदासजीकी प्रणालीसे सन्तसेवा करके) अपने कुलके दीपक हुए। सभी जानते

थे कि आप रैदासवंशी हैं, परंतु बड़ी-बड़ी सभाओंमें बड़े-बड़े महापुरुष आपका सम्मान करते थे। भगवल्लीलापदोंको पढ़ते-पढ़ते आपने शरीर छोड़ा और भगवद्धामको प्राप्त किया। आपपर प्रसन्न होकर श्रीगुरु और गोविन्द दोनोंने दो फल दिये, अतः आपके दोनों हाथोंमें हरिभक्तिके लड्डू रहे॥ १७७॥

श्रीबीठलदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीबीठलदासजी भगवान् श्रीरामके अकिंचन भक्त थे। आप बड़े सन्त-सेवी थे। वर्षमें एक महोत्सव करते थे। एक धनी-मानी सेठ इनके उत्सवमें धन देता था, पर ये उसे आदर विशेष न देकर उसकी ओरसे उदास ही रहते थे। प्रसंगवश किसी समय धनके मदमें चूर उस सेठको आपने फटकार दिया। अप्रसन्न होकर उसने इनके पास आना-जाना बन्द कर दिया फिर भी इन्होंने उसकी परवाह नहीं की। उत्सवका समय आ गया, उस सेठने सोचा कि इस बार मेरी सहायताके बिना देखें कैसे उत्सव होता है। भगवान् श्रीरामने यह देखकर एक वणिक्का रूप धारण किया और बीठलदासजीके पास आकर कहा—'महाराज! मैं एक बनिया हूँ, प्रभुकी प्रेरणासे आपके पास आया हूँ। ये तीन सौ अशर्फियाँ लीजिये और ठाठके साथ उत्सव कीजिये। मुझे प्यास लगी है अतः थोड़ा जल पिला दीजिये।' श्रीबीठलदासजी जल लेने गये उसी समय प्रभु अन्तर्धान हो गये। लौटकर आनेपर उन्हें न देखकर लोगोंसे पूछा कि वह बनिया भगत कहाँ गया, पर किसीने नहीं बताया; क्योंकि बाहर जाते किसीने देखा ही नहीं था। तब आप समझ गये कि अशर्फियाँ देनेवाले श्रीरामजी ही थे। प्रभु-कृपाका अनुभवकर आप विह्वल हो गये। सामान मँगवाकर दो दिनका उत्सव किया। सभी सन्तोंको अन्न, वस्त्र, प्रसादसे सन्तुष्ट किया। इस चमत्कारको देखकर उस सेवकका अहंकार दूर हो गया। क्षमा-प्रार्थना करता हुआ चरणोंमें गिर गया। तब आपने उसे सप्रेम समझाया कि तुच्छ संसारीका भरोसा न करके श्रीरामजीका ही भरोसा करो।

भगवद्भक्तोंके भक्त

क्वाहब श्रीरँग सुमति सदानन्द सर्बसु त्यागी।
स्यामदास लघुलंब अननि लाखै अनुरागी॥
मारू मुदित कल्यान परसबंसी नारायन।
चेता ग्वाल गुपाल सँकर लीला पारायन॥
सन्त सेय कारज किया तोषत स्याम सुजान कों।
भगवंत रचे भारी भगत भक्तनि के सनमान कों॥ १७८॥

भगवद्भक्तोंकी सेवा करनेके लिये भगवान्ने इन सन्तोंको प्रकट किया। इन सन्तोंने भक्तोंकी सेवाके द्वारा भगवान्को प्रसन्न किया। श्रीक्वाहबजी, सुन्दर मतिवाले श्रीरंगजी, सन्तसेवाके लिये सर्वस्वका त्याग करनेवाले श्रीसदानन्दजी, लघुलम्ब (बौने) श्रीश्यामदासजी, अनन्य भक्त श्रीलाखाजी, मारु रागके प्रवीण गायक श्रीकल्याणजी, परसवंशमें उत्पन्न श्रीनारायणजी, श्रीचेताजी, श्रीग्वालजी, श्रीगोपालजी और भगवान्की लीलाओंके प्रेमी श्रीशंकरजी—इन भक्तोंने सन्तसेवा रूप महान् कार्य किया। उससे सुजान श्यामसुन्दर सन्तुष्ट हुए॥ १७८॥

भगवद्भक्तोंकी सेवा करनेवाले इन भक्तोंमेंसे कुछका चरित इस प्रकार है—

श्रीसदानन्दजी

आप बड़े प्रेमसे सन्त-सेवा करते थे। आप सर्वस्व त्यागकर भी सन्तोंको सन्तुष्ट करना अपना कर्तव्य समझते थे। सन्तोंके आनेपर घरकी सब सामग्री उनके सामने रख देते और प्रार्थना करते कि आप इच्छानुसार इसका उपयोग कीजिये। भण्डारेमें सन्त भोजन करके सामानकी पोटली बाँधकर चल देते फिर भी आप

किसी सन्तको टोकते नहीं। आपकी उदारताके प्रभावसे चारों ओरसे ऋद्धि-सिद्धि आया ही करती। एक बार एक सन्त इनके पास आकर बोले—मैं बड़ा अभागी हूँ। मेरे पास रहनेके लिये घर नहीं है। जो था वह छिन गया। खाने-पहननेके लिये अन्न-वस्त्र नहीं है, अत: मेरे रहने और खाने-पीनेका प्रबन्ध कर दीजिये। श्रीसदानन्दजीने कहा—आप अपने कुटुम्बके साथ आज ही मेरे स्थानमें आ जाइये। रहिये, खाइये। मैं अपने लिये वनमें एक झोपड़ी बना लूँगा। ऐसा कहकर अपना सर्वस्व उसे सौंपकर स्वयं वनमें जाकर रहने लगे। भगवान्‌ने एक अपने धनी भक्तको स्वप्नादेश दिया कि मेरा प्रिय भक्त सदानन्द वनमें रह रहा है। एक आश्रम बनवाकर उसमें उसे रखो। सम्पत्ति रहनेवाली नहीं है, सन्त-सेवा करके उसे स्थिर करो। ऐसा ही हुआ। उसने आश्रम बनवाकर इन्हें रखा और खर्चेके लिये सीमित सीधा-सामान भी देने लगा, पर इनके यहाँ सन्तोंकी भीड़ अधिक होती। कभी-कभी सामानकी कमी पड़ने लगी। एक दिन आप उस स्थानको छोड़कर कहीं चले गये। इनके जाते ही साधुओंकी बड़ी जमात आ गयी। तब भगवान् सदानन्दजीका रूप धारण करके आये और उन्होंने सभी सन्तोंकी खूब सेवा की तथा आश्रमको अन्न-धनसे भर दिया। फिर वैश्य भक्तका रूप बनाकर श्रीसदानन्दजीके पास आये और बोले—अरे! आप यहाँ कैसे आ गये? अभी तो आप सन्तोंकी पंगत करा रहे थे। मैंने देखा है, आपके आश्रममें ऋद्धि-सिद्धिके भण्डार भरे हैं। पंगत करके सन्तोंने वरदान दिया है कि सदानन्द! तुम्हारे यहाँ सदा ही आनन्द रहेगा। कभी किसी वस्तुकी कमी न होगी। यह सुनकर आप आये और मन-ही-मन अपने आराध्य प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी कृपाकी अनुभूति की।

श्रीनारायणदासजी

आपकी सन्त-सेवामें बड़ी प्रीति थी। एक बार एक राजा आश्रमके समीप हरे वृक्षोंको कटवा रहा था। श्रीनारायणदासजीने मना किया, पर वह नहीं माना। राजकर्मचारी पेड़ काटने लगे। तब आप पेड़के समीप खड़े हो गये और बोले कि मैं पेड़को काटने नहीं देता हूँ। पेड़ काटना जीवहत्याके समान है। राजकर्मचारियोंको क्रोध आ गया। एकने श्रीनारायणदासजीपर जैसे ही प्रहार किया, वैसे ही स्वयं चिल्लाकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और छटपटाने लगा। इस समाचारको सुनकर राजा भी वहीं आ गया। प्रहार करनेवालेको चोट लगी। सन्त जीवकी रक्षा कर रहे थे अत: उन्हें चोट नहीं लगी। इस चमत्कारसे प्रभावित होकर राजाने श्रीनारायणदासजीका विशेष सत्कार किया और इनके उपदेशोंको स्वीकार किया। केवल प्राणियोंके प्रति ही नहीं, वृक्षोंके प्रति भी इनके मनमें करुणा थी।

श्रीशंकरजी

सन्तसेवी श्रीशंकरजी एकबार अपने गाँवसे बाहर दूसरे गाँवमें गये हुए थे। वहाँपर आपने किसी सेठके द्वारपर कई साधुओंको देखा। निकट जाकर दण्डवत् प्रणाम करनेके बाद पूछनेपर मालूम हुआ कि सन्तजन गेहूँका आटा और कुछ घी भगवान्‌के भोगके लिये माँग रहे हैं और वह सेठ बेझरके आटेकी पर्ची दे रहा है। श्रीशंकरजीने उससे कहा कि—तेरी गाँठसे क्या जा रहा है? पर्ची तुम्हें बनानी है। सामान पंचायती मिलना है। गेहूँका ही आटा और थोड़ा घी दे दो। सन्त-सेवा हो जायगी, इसमें तुम्हारी क्या हानि होगी? यह सुनकर सेठने क्रुद्ध होकर कहा—'यदि आप ऐसे बड़े सन्तसेवी हैं तो इन्हें ले जाइये और मनमाना भोजन कराइये।' इसपर आपने सन्तोंसे विनती करके कहा—भगवन्! आप लोग मेरे यहाँ चलिये। अश्रद्धालुका अन्न लेना उचित नहीं है। आपके पास आवश्यक सीधा-सामान न था। इसलिये घरका कुछ सामान बेंचकर आपने गेहूँका आटा और घी आदि लाकर सन्तोंको दिया। सन्तोंने भोग लगाया पाया। आपकी इस सेवा-निष्ठापर प्रसन्न होकर भगवान् एक वैश्यका रूप धारण करके आये और एक पात्रमें भरकर मुहरें देते हुए बोले कि हमें प्रभुकी आज्ञा हुई है, अत: हम यह धन सन्त-सेवाके निमित्त देते हैं, आप स्वीकार

करें। ऐसा कहकर वे तुरंत अन्तर्धान हो गये। तब आपने जाना कि ये तो स्वयं प्रभु ही थे। कृपा करके आये और सन्त-सेवाका उपदेश दे गये।

श्रीलाखाजी

यह नाम कई स्थानोंपर आया है, अतः यह प्रतीत होता है कि लाखा नामके कई भक्त हुए। छ० १८५ में श्रीकील्हदेवजीके शिष्योंमें श्रीलाखाजी हैं। छ० १०७ में रामोपासक वानरवंशी श्रीलाखाजी हैं। प्रस्तुत छ० १७८ में आये हुए श्रीलाखाजीके सम्बन्धमें सर्वेश्वर भक्तमालमें लिखा है कि ये गुनीर गाँव हँसुवा फतेहपुरके निवासी अध्वर्यु ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम श्रीपरमानन्द था। लक्षपाकी, लाखापाकी, लक्षदास और लाखा आदि इनके कई नामोंका उल्लेख मिलता है। इनके द्वारा रचित 'भागवत पुराण सारांश' है। उससे तथा चन्द्रदासकृत 'भक्तविहार' से इनका परिचय मिलता है।

गुनीर गाँव गंगाजीके तटपर बसा हुआ है, वहीं झोंपड़ी बनाकर लक्षदासजी रहते थे। इनका गंगा-स्नान करनेका नित्य-नियम था। दैवयोगसे एक बार गंगाजी कुटीसे दूर हट गयीं। उस समय ये पूर्ण वृद्ध हो चुके थे फिर भी नित्य स्नान करने जाते थे। ग्रीष्मसे तप्त रेती और उसपर नंगे पैर धीरे-धीरे चलना, उनकी कठिन तपश्चर्या थी। आने-जानेमें असमर्थ होकर एक दिन इन्होंने प्रार्थना की—'मातः गङ्गे! अब आप अपने पूर्वस्थानपर पधारें, यदि नहीं चलेंगी तो मैं भी कुटियापर नहीं जाऊँगा।' गंगाकी धारासे आवाज आयी कि—'तुम चलो, मैं आ रही हूँ।' यह सुनकर प्रसन्नचित्त आप कुटीपर आये। पीछेसे गंगाजीकी धारा भी कुटीके निकट आ गयी। इस घटनाको देखकर दर्शक चकित हो गये। इनका सुयश चारों ओर फैल गया।

श्रीलक्षदासजीने अपने ग्रन्थमें गुरु-परम्पराका उल्लेख किया है और अपनेको श्रीवर्द्धमान एवं गंगलभट्टाचार्यकी परम्पराका अनुवर्ती लिखा है। कई स्थानोंपर हरिनारायण आदि शब्दोंके साथ गुरु शब्दोंको जोड़कर हरि-गुरुनिष्ठाका परिचय दिया है। इन्हें श्रीरूपनारायणजीसे सम्प्रदायकी शिक्षा और श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजीसे दीक्षा प्राप्त हुई थी।

कहा जाता है कि इनका बचपनसे ही प्रभुमें अनुराग था। तपश्चर्याके कारण सिद्धोंमें गिने जाने लगे थे। फिर भी इन्हें गुरुदेवकी खोज थी। एक बार श्रीहरिव्यासदेवाचार्य पर्यटन करते हुए सन्त-मण्डली सहित उधर पधारे। इन्होंने उनकी महिमा सुन रखी थी अतः दर्शन पाकर अति प्रसन्न हुए और उनके श्रीचरणोंमें पड़कर दीक्षाके लिये प्रार्थना की। तब आचार्यने एक लाख साधु-ब्राह्मणोंको भोजन करानेका आदेश दिया। आपने ऐसा ही किया। तभीसे आपके लक्षपाकी आदि नाम प्रसिद्ध हुए। आचार्यने दीक्षा देकर कहा कि—गंगातटपर ही रहकर भजन करो। अन्तिम अवस्थामें आप श्रीधाम वृन्दावनमें आकर रहे और यहीं शरीर छूटा। सूरदासवाली कुंज, पत्थरपुरा, वृन्दावनमें इनकी समाधि बनी हुई थी।

श्रीहरीदासजी

सरनागत कों सिबिर दान दाधीच टेक बलि।
परम धरम प्रहलाद सीस जगदेव देन कलि॥
बीकावत बानैत भक्त पन धर्म धुरंधर।
तूँवर कुल दीपक्क संत सेवा नित अनुसर॥
पार्थ पीठ आचरज कौन सकल जगत में जस लियो।
तिलक दाम परकास कों हरीदास हरि निर्मयो॥ १७९॥

तिलक-कण्ठीधारी वैष्णवोंकी सेवाके वास्ते ही भगवान्ने इस पृथ्वीपर श्रीहरीदासजीको प्रकट किया। शरणागतकी रक्षा करनेमें आप राजा शिविके समान थे। दान देनेमें श्रीदधीचि ऋषिके समान, प्रतिज्ञाको निभानेमें राजा बलिके समान, वैष्णव धर्मका पालन करनेमें श्रीप्रह्लादजीके समान और रीझकर सिर देनेमें श्रीजगदेवजीके समान थे। श्रीबीकाजीके वंशमें प्रसिद्ध शूरवीर थे। भक्तोचित प्रण और धर्मका पालन करनेमें अतिश्रेष्ठ थे। तूँवर क्षत्रिय कुलके दीपक और नित्य सन्तसेवामें तत्पर रहनेवाले थे। अर्जुन और परीक्षित्के वंशमें उत्पन्न श्रीहरीदासजीमें ऐसे गुणोंका होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अपनी दृढ़ भक्तिके कारण आपने सारे संसारमें सुयश प्राप्त किया॥ १७९॥

श्रीहरीदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीप्रह्लादजी, श्रीशिविजी, श्रीदधीचिजी और श्रीबलिजी —इन भगवद्भक्तोंके गुण श्रीमद्भागवतमें वर्णन किये गये हैं। श्रीहरीदासजीमें ये सभी गुण एक स्थानपर ही दिखलायी पड़ते हैं। टीकाकार श्रीप्रियादासजी कहते हैं कि मूल छप्पयमें श्रीनाभाजीने रीझनेमें श्रीहरीदासजीको श्रीजगदेवजीके समान कहा है, परंतु कलियुगके भक्त श्रीजगदेवजीके रीझनेके प्रसंगको प्रायः सब लोग नहीं जानते हैं। मैंने उसे किसी सन्तसे जैसा सुना है, वैसा यहाँ प्रकाशित कर रहा हूँ। उत्तम रूप और गुणोंसे युक्त एक नटी थी। वह साक्षात् शक्ति कालीदेवीका स्वरूप ही थी। जब वह गाती थी, तो सुननेवालोंको सुननेकी बड़ी भारी चटपटी लग जाती थी और उसकी मधुर-मुसकान देखकर वे मोहित हो जाते थे। रिझवार राजा श्रीजगदेवजीने एक बार उस नटीका अद्भुत नृत्य देखा और मधुर गानको सुना तो वह उसपर रीझ गया। जब उसने पुरस्कार देनेका विचार किया तो कोई भी वस्तु उसके योग्य न दिखायी पड़ी। अन्तमें उसने नटीसे कहा—मैंने अपना सिर तुम्हें दिया, जब चाहो, तब इसे ले सकती हो। अब यह मेरा नहीं है, तुम्हारा है।

श्रीजगदेवजीके द्वारा दिये गये मस्तकदानको स्वीकारकर उस नटीने कहा—'मैंने भी अपना दाहिना हाथ आपको दिया। अब इस हाथको फैलाकर न तो किसीसे कुछ माँगूँगी और न लूँगी।' कुछ दिनोंके बाद किसी एक राजाने सुना कि उस नटीने राजा जगदेवसे ऐसा कुछ इनाम पाया है कि उसके बदले अपना दाहिना हाथ उन्हें दे दिया। अब मैं उस नटीको अधिक इनाम देकर जगदेवके इनामको तुच्छ कर दूँ। इस विचारसे उस राजाने नटीको नृत्य करनेके लिये अपने दरबारमें बुलाया। नटीने अपना नृत्य-गान प्रस्तुत किया, तब उस राजाने प्रसन्न होकर नटीको कुछ इनाम देना चाहा। नटीने लेनेके लिये अपना बायाँ हाथ फैलाया। इसपर राजाने रुष्ट होकर कहा—'हमारा इतना अपमान।' नटीने कहा—'मैं अपना दाहिना हाथ राजा जगदेवजीको दे चुकी हूँ, अतः दाहिने हाथमें किसीसे कुछ नहीं ले सकती हूँ।' उस राजाने पूछा—'राजा जगदेवजीसे ऐसी कौन-सी अलभ्य वस्तु मिली है? तुम उस वस्तुको मुझे दिखा दो और उससे दसगुनी वस्तु मुझसे ले लो।' नटीने कहा—दूसरा कोई वैसी वस्तु नहीं दे सकता है।

उस राजाको नटीने बहुत समझाया, परंतु वह नहीं माना। उसे जिद सवार हो गयी। उसने बार-बार उस वस्तुको लाकर दिखानेका हठ किया। तब नटी बारह वर्ष बाद परम बड़भागी राजा जगदेवके पास गयी और बोली—'राजन्! मेरी वस्तु मुझे दीजिये।' राजाने सिर काटकर नटीको दे दिया। नटीने धड़को न जलानेका आदेश देकर सुरक्षित रखवा दिया और उस पुरस्कारको थालमें ढककर उस राजाके पास ले आयी और दिखाकर बोली—'इसे देख लीजिये और इससे दसगुनी या बराबर ही दीजिये।' सिरको देखते ही वह राजा मूर्च्छित हो गया और पृथ्वीपर गिर पड़ा। अनेक उपचारोंसे उसकी मूर्च्छा दूर हुई, तब उसने कहा—'मैंने तो यह समझा था कि धन मिला होगा, अतः उससे दसगुना देनेको कहा, किन्तु यहाँ धनकी बात नहीं रही। अब मैं क्या करूँ और क्या दूँ, मेरे वशकी बात नहीं है।' नटीने कहा—'ऐसे अमूल्य पुरस्कारके बदले ही मैंने अपना दाहिना हाथ राजा जगदेवको दिया है।' राजा लज्जित हो गया, इसके पश्चात्

नटीने आकर राजा जगदेवके धड़से उनका सिर जोड़ दिया और जिस पदपर रीझकर उन्होंने अपना सिर दिया था, उसी पदको गाया। तानके साथ आलापको सुनकर राजा जगदेव जीवित हो गये।

राजा जगदेवजीकी रिझवार-निष्ठाका वृत्तान्त एक बड़े (यवन) राजाकी लड़कीने सुना तो वह उनमें आसक्त हो गयी और उसने अपने पितासे कहा कि 'मेरा विवाह आप राजा जगदेवजीके साथ कर दीजिये।' उसने जगदेवजीको बुलाकर अनेक प्रकारसे समझा-बुझाकर स्पष्ट कहा कि 'आप मेरी पुत्रीके साथ विवाह कर लीजिये।' श्रीजगदेवजीने स्वीकार नहीं किया। राजाने पुनः-पुनः आग्रह किया, परंतु इन्होंने हर बार मना ही किया। तब उस राजाने जगदेवजीको मार डालनेकी आज्ञा दी। बधिक लोग मारनेके लिये ले जा रहे थे, राजकन्याने देखा तो वह बोली कि 'इनको मत मारो, मेरा इनमें अनुराग है। इन्हें मेरे सामने लाओ।' सामने लाये जानेपर राजकन्याने इनको अपनी ओर देखनेके लिये बाध्य किया। परंतु श्रीजगदेवजीने राजकन्याकी ओर नहीं देखा, तो रुष्ट होकर उसने भी इन्हें मार डालनेकी अनुमति देकर कहा कि 'इनके सिरको काटकर मेरे पास ले आओ।' बधिकोंने ऐसा ही किया। राजकन्या अपने सामने कटे सिरको रखकर जब उसकी ओर देखने लगी तो वह सिर राजपुत्रीके सामनेसे घूम गया। इस धर्मनिष्ठापर सभी लोग रीझ गये।

श्रीप्रियादासजीने राजा जगदेवसे सम्बन्धित इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

प्रहलाद आदि भक्त गाए गुण भागवत सब इक ठौर आये देखे 'हरिदास' मैं।
रीझि 'जगदेव' सो यों कहिकै बखान कियौ, जानत न कोऊ सुनौ कर्‌यौ लै प्रकास मैं॥
रहै एक नटी सक्तिरूप गुण जटी गावै लागै चटपटी मोह पावै मृदु हाँस मैं।
राजा रिझवार करै देवे को विचार, पै न पावै सार काटै सीस राख्यौ तेरे पास मैं॥ ६०४॥

दियौ कर दाहिनौ मैं, यासों नहीं जाचौं कहूँ, सुनि एक राजा भेद भाव सों बुलाई है।
नृत्य करि गाई रीझि 'लेवौ कही' आई 'देहु' ओड़्यो बायों हाथ, रिस भरिकै सुनाई है॥
'इतौ अपमान', 'पानि दक्षिन लै दियौ अहो 'नृप जगदेवजू कों' 'ऐसी कहा पाई है'।
'तासों दसगुनी लीजै, मोको सो दिखाय दीजै', 'दई नहीं जाय काहू, मोहिये सुहाई है॥ ६०५॥

कितौ समझावै 'ल्यावौ' कहै, यहै जक लागी, गई बड़भागी पास वस्तु मेरी दीजियै।
काटि दियो सीस, तन रहै ईश शक्ति लखो, ल्याई बकसीस थार ढाँपि देखि लीजियै॥
खोलिकै दिखायो, नृप मूरछा गिरायो तन, धन की न बात अब याकौ कहा कीजियै।
मैं जु दीनौ हाथ जानि आनि ग्रीव जोरि दई लई वही रीझि पद तान सुनि जीजियै॥ ६०६॥

सुनी जगदेव रीति, प्रीति नृपराज सुता पिता सों बखानि कही वाही कौ लै दीजियै।
तब तौ बुलाये समुझाये बहु भाँति खोलि बचन सुनाये अजू बेटी मेरी लीजियै'॥
नट्‌यौ सतबार जब कही 'डारों मारि', चले मारिबे को, बोली वह 'मारौ मत भीजियै।
'दृष्टि सों न देखै' कही 'ल्यावौ काटि मूंड़', लाए चाहै सीस आँखिन को, गयौ फिरि रीझियै॥ ६०७॥

टीकाकार श्रीप्रियादासजी बताते हैं कि श्रीजगदेवजीकी रिझवार-निष्ठाका विस्तारसे वर्णन किया गया। अब श्रीहरीदासजीने जैसी साधु-सेवा की, उसको सुनिये। राजा होकर इनकी साधु-सेवामें ऐसी निष्ठा थी कि वे सन्तोंसे परदा या किसी प्रकारका कपट नहीं करते थे। बिना रोक-टोकके साधुओंका महलोंमें आना-जाना होता था। ऐसी विलक्षण एवं दृढ़ निष्ठा देखकर भगवान्ने इनकी परीक्षा ली। परीक्षार्थ एक अल्पवयस्क सन्तका रूप धारण करके आये और इनके यहाँ निवास करने लगे। उनके प्रति श्रीहरीदासजीका भगवन्मय वात्सल्य भाव था। वे बालक-बालिकाओंके साथ खेलते रहते। एक दिन ग्रीष्म-ऋतुमें बालक-बालिका छतपर सोये हुए थे, वे कुछ ओढ़े नहीं थे। श्रीहरीदासजी दातौन करनेके लिये छतपर चढ़कर गये। गहरी

नींदमें सन्त-भगवन्तको बेसुध सोये देखकर इन्होंने अपनी चादर ओढ़ा दी। शयनके दर्शनकर आप नीचे उतरे तो हृदयमें प्रभुका ध्यानकर उसमें मग्न हो गये।

प्रात:काल होनेपर बालक भगवान् और राजाकी कन्या दोनों जगे। विलम्बसे जगनेके कारण घबड़ाये। विचार करने लगे कि हम चादर ओढ़कर नहीं सोये फिर यह किसकी चादर है, कौन ओढ़ा गया? बालिकाने पहचानकर कहा कि यह तो पिताजीकी है। भगवान् हरीदासजीकी परीक्षा ले रहे थे, अत: जैसे कुछ भूल हो गयी हो—ऐसी मुखमुद्रा बनाये, दृष्टिको नीचे किये हुए छतसे उतरकर (स्नानार्थ) चले। प्रभुकी ऐसी चेष्टा देखकर रास्तेमें मिलकर श्रीहरीदासजीने चरण पकड़ लिये और एकान्तमें विनती करते हुए कहा कि 'प्रभो! आप जो भी लीला करें, सो उचित है। परीक्षार्थ ऐसी लीला न करें, जिससे नास्तिक दुष्टजन सन्तोंकी निन्दा करें। मुझे अपनी निन्दासे भय नहीं है, वह तो मुझे सुख देनेवाली है, परंतु सन्त-निन्दासे हमें भय है।'

श्रीहरीदासजीने सन्त भगवान्से पुन: कहा कि महाराज! इस प्रकार आपको चेतावनी देनेसे मेरी भक्तिमें कलंक लगता है। आप चाहे जैसे अपने भक्तकी परीक्षा लें, मुझे कुछ भी नहीं कहना चाहिये, परंतु मैंने इस शंकाके कारण आपसे कुछ कहा कि कहीं कोई साधु-सन्तका अपमान न करे। किसी साधुमें किसी प्रकारकी कमी है, यह सुनना मुझे अच्छा नहीं लगता। सन्त भगवान्ने फिर परीक्षार्थ ऐसा भाव दिखाया कि जैसे लज्जित हो रहे हों। सन्त भगवान्ने कहा—मैं अब कहीं अन्यत्र जाकर भजन करना चाहता हूँ। हरीदासने चरण पकड़ लिये और अपने सच्चे सद्भावसे सन्तरूपधारी भगवान्को प्रसन्न कर लिया। तब भगवान् अपने रूपसे प्रकट हो गये और प्रसन्न होकर उन्हें अपना स्वरूप प्रदान किया। फिर बोले—मैं तुम्हारी सन्त-सेवा-निष्ठासे प्रसन्न हूँ, जो चाहो सो वरदान माँग लो। श्रीहरीदासजीने कहा—'हे प्रभो! आप उसी बालक सन्तरूपसे मेरे घरमें रहिये। साथ-साथ सेवा-भजन करनेका सुख दीजिये।' 'एवमस्तु' कहकर भगवान् पुन: उसी बालक सन्तरूपमें आ गये। सन्तोंमें इनकी ऐसी श्रद्धा थी कि भगवान् सन्तरूप धारणकर इनके यहाँ रहे। आपके छोटे भाई श्रीगोविन्ददासजी थे, जिन्हें सन्त-भगवन्तके ही आगे बंसी बजानेकी प्रतिज्ञा थी। बादशाहके कहनेपर भी बंसी नहीं बजायी।

श्रीप्रियादासजीने आपके इस पावन चरित्रका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

निष्ठा रिझवार रीति कीनी विस्तार यह सुनौ साधु सेवा हरीदास जू ने करी है।
परदा न सन्त सों है देत हैं अनन्त सुख रह्यौ सुख जानि भक्त सुता चित धरी है॥
दोऊ मिलि सोवैं रितु ग्रीषम की छात पर, गात पर गात सोये सुधि नहीं परी है।
दातुन के करिबे को चढ़े निसि सेस आप चादर उढ़ाय नीचे आए ध्यान हरी है॥ ६०८॥
जागि परे दोऊ, अरबरे देखि चादर कों पेखि पहिचानी सुता पिता ही की जानी है।
सन्त दृग नये चले बैठे मग पग लये गये लै एकान्त में यों विनती बखानी है॥
नेकु सावधान ह्वैकै कीजिये निसङ्क काज, दुष्टराज छिद्र पाय कहैं कटु बानी है।
तुमको जु नाव धरैं जरै सुनि हियौ मेरौ, डरैं निन्दा आपनी न होत सुखदानी है॥ ६०९॥
इतनी जतावनी में भक्ति कों कलङ्क लगै, ऐपै सङ्क वही, साधु घटती न भाइयै।
भई लाज भारी, विषैबास धोय डारी नीके, जीके दुख रासि चाहै कहूँ उठि जाइयै॥
निपट मगन किये नाना विधि सुख दिये, दिये पै न जान, मिलि लालन लड़ाइयै।
गोविन्द अनुज जाके बाँसुरी कौ साँचोपन मन मैं न ल्यायौ नृप इहि विधि गाइयै॥ ६१०॥

श्रीहरिदासजी बड़े ही शरणागतवत्सल थे। एक बार एक ब्राह्मणने एक तुर्ककी हत्या कर दी। तुर्कोंने ब्राह्मणका पीछा किया। वह भागकर श्रीहरिदासजीकी शरणमें पहुँच गया। दलबल सहित वे हरिदासजीके पास जाकर झगड़ा करने लगे। पर इन्होंने उसे नहीं लौटाया। तब उस तुर्कने बादशाहके यहाँ पुकार की। बादशाहने इन्हें बुलाकर हत्यारेको वापस करनेका आग्रह किया। इसपर आपने स्पष्ट कहा कि मैं किसी अपराधीका पक्षपाती नहीं हूँ परंतु यह ब्राह्मण मेरी शरणमें है, अत: अब मैं इसका त्याग नहीं कर सकता। इसके बदले

मेरा सिर ले लीजिये। इसे छोड़ दीजिये। बादशाहने कहा—ठीक है। तुम अपना सिर दे दो। शाही हुक्म हो गया, सिर कटनेवाला ही था कि बादशाहने कहा—तुम अपने धर्मके पक्के हो, इसलिये मारे जानेयोग्य नहीं हो। प्रसन्न होकर बादशाहने इन्हें पुरस्कार मैं एक तुर्रा (कलगी) दिया। ये उसे बाँधकर दरबारमें जाते। कुछ दिन बाद उसने अपना दिया इनाम इनके पास न देखकर पूछा तो इन्होंने बताया कि किसीने मुझसे माँगा तो हमने उसे दे दिया। बादशाहने कहा—ऐसी मूल्यवान् वस्तु आपने कैसे दे दी? आपने उत्तर दिया कि माँगनेपर तो मैं अपना सिर ही दे सकता हूँ, तब किसी वस्तुकी क्या बात? बादशाह चुप हो गया।

कुछ दिनोंके बाद बादशाहने दो गुप्तचरोंसे कहा कि तुम फकीरोंका वेश बनाकर हरिदासकी परीक्षा लो। इन दोनोंने जाकर कहा कि हमारे पीर साहबके शरीरमें फोड़ा हो गया है। वह अच्छा नहीं हो रहा है। हकीमोंने कहा है कि किसी वीर पुरुषका मांस लाओ तो यह ठीक हो सकता है। प्रसन्नतासे आप दे सकें तो दें। इन्होंने झट छुरी ली और मांस काटने लगे। उन दोनोंने पकड़ लिया और कहा कि अभी नहीं, हम फिर आयेंगे। बादशाहने यह सुनकर इनका बड़ा सम्मान किया।

एक बार श्रीहरिदासजी ध्यानमग्न थे। इसी बीच बादशाहको इनसे मन्त्रणाकी जरूरत पड़ी। दूत बुलाने आये पर ध्यान करते देखकर वापस गये। बादशाहने दो मन्त्री और एक पठानको भेजा कि आवश्यक मन्त्रणा करके आओ। इनके आनेपर भी आपका ध्यान नहीं छूटा था। इन्होंने कहा कि हम उनके ध्यानमें बाधा न करेंगे, तब इन्हें भीतर जाने दिया गया। ये लोग बड़ी देरतक बैठे रहे। पठानके मनमें दुर्भाव आया, मिथ्या समाधि जानकर उसने इनके शरीरमें परीक्षार्थ छुरी चुभाई पर वह चुभी नहीं। तब उसने अपने शरीरकी पूरी शक्ति लगायी। फिर भी छुरी नहीं चुभी, तब वह भयभीत और आश्चर्यचकित हो गया। कुछ देर बाद आपकी मानसी-सेवा पूरी हुई। तब आपने नेत्र खोले। इन लोगोंने आवश्यक मन्त्रणा की और धृष्टता बतायी, क्षमा-याचना की। बादशाहने सुना तो उसकी श्रद्धा बढ़ी। इस प्रकार प्रभुने आपकी कीर्तिका विस्तार किया।

एक प्रभावशाली दुष्ट सदा इनसे अकारण द्वेष किया करता था। एक बार उसने अपने साथियोंसे कहा कि यदि हरिदासको किसी प्रकार कोई मार डाले तो मैं उसे अपना आत्मीय मानूँगा। एक साथी तैयार हो गया। उसने इनकी उदारताकी कथा सुन रखी थी। उसका अनुचित लाभ उठानेकी इच्छासे वह इनके पास आया और सेवक बनकर सेवा करने लगा। बहुत दिन बीतनेपर एक बार आप उसपर प्रसन्न हो गये और बोले—तुम जो चाहो सो माँग लो। उस राजपूतने कहा—'आप अपना सिर हमें दे दीजिये।' आपने कहा—बहुत अच्छा, यह तलवार है, चाहे आप काट लो, कहो तो मैं काट दूँ। अभी एकान्त है, किसीको पता भी न पड़ेगा। आप सिर लेकर चम्पत हो जाओ। इनकी निष्कपट बातें सुनकर उसे बड़ा अनुराग हुआ। यह इनके सम्पर्कमें रहनेका फल था। उसने सच्ची बात बता दी कि मेरा साथी आपका द्वेषी है, उसको प्रसन्न करनेके लिये मैंने आपका सिर माँगा है। अब मैं उससे पूछकर तब लूँगा। अपने साथीके पास आकर उसने सब हाल बताकर कहा कि वे महान् धर्मशील हैं, सिर देनेके लिये तैयार हैं। अब तुम उनसे द्वेष न करके प्रेम करो तो मैं उन्हें तुम्हारे पास ले आऊँ। इसने स्वीकार किया, तब उस राजपूतने कहा—आप मेरे साथीके पास चलिये। ऐसा कहकर वह रातको गुप-चुप इन्हें लेकर चला। आपने अपने गलेमें रस्सी बाँधी और राजपूतके हाथमें थमा दी। फिर उसके पीछे-पीछे चले। इस प्रकार इन्हें आया देखकर वह पानी-पानी हो गया। इनके पैरोंपर गिरकर उसने इनका सम्मान किया और निवास-स्थानतक पहुँचाने आया।

श्रीकृष्णदासजी

तान मान सुर ताल सुलय सुंदर सुठि सोहै।
सुधा अंग भ्रूभंग गान उपमा कों को है॥

रतनाकर संगीत राग माला रँग रासी।
रिझये राधालाल भक्त पद रेनु उपासी॥
स्वर्नकार खरगू सुवन भक्त भजन पद दृढ़ लियो।
नंदकुँवर कृष्नदास कों निज पग तें नूपुर दियो॥ १८०॥

श्रीकृष्णदासजी महान् भक्त थे। एक बार नृत्य करते समय इनके पैरमेंसे नूपुर खुलकर गिर गया तो स्वयं नन्दनन्दनने अपने चरणोंमेंसे खोलकर एक नूपुर इनके पैरमें बाँध दिया। जिस समय ये स्वर-तालको सँभालकर सुन्दर लयके साथ गाते थे, उस समय श्रोताओंको बड़ा ही आनन्द आता था। नाचनेका सुन्दर ढंग, भौहोंके साथ अंगोंका संचालन और गायनमें इनके समान कोई भी नहीं दिखायी देता था। आप शास्त्रीय संगीतके विशेषज्ञ थे। आपने अपने भक्तियुक्त सद्गुणोंसे श्रीराधाकृष्णको रिझा लिया। भक्तोंकी चरणधूलिके उपासक, खरगू स्वर्णकारके सुपुत्र श्रीकृष्णदासजीने भक्तोंकी सेवाका दृढ़ नियम ले रखा था॥ १८०॥

श्रीकृष्णदासजीसे सम्बन्धित विशेष विवरण इस प्रकार है—

भक्तवर श्रीकृष्णदासजी सुनार जातिके थे। इन्होंने परमानन्दके रूप युगल श्रीराधाकृष्णकी सेवाको अपनाया। आप नित्य-नियमसे प्रिया-प्रियतमकी सेवा करनेके पश्चात् उनके सामने आनन्दमग्न होकर नृत्य और गान करते थे। एक दिन आप नाचने-गानेमें ऐसे मगन हो गये कि आपको अपने शरीरकी सुध नहीं रही। इसी बीच आपके एक पैरका नूपुर खुलकर गिर गया। आप नृत्य-भावमें विभोर थे, अत: आप नूपुरको बाँध नहीं सके। नूपुर टूटकर गिर गया है, इसका आपको पता नहीं था। घुँघरूके बिना बजे तालकी गति बिगड़ गयी। नृत्य-गान और तानके रंगमें रँगे श्रीलालजीसे यह सहन नहीं हुआ, अत: उन्होंने अपने श्रीचरणमेंसे अपना दिव्य नूपुर खोलकर कृष्णदासजीके पैरमें बाँध दिया। अब तालपर घुँघरूका बजना सुनकर श्रीठाकुरजी बहुत ही प्रसन्न हुए। नृत्य-गानको समाप्तकर श्रीकृष्णदासजी जब स्वस्थ हुए तो उन्होंने देखा कि मेरे पैरका नूपुर अलग धरतीपर पड़ा है और उसकी जगह मेरे पैरमें दूसरा दिव्य नूपुर बँधा हुआ है। भगवान्‌की इस कृपालुताका अनुभव करके आपके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। दूसरे जिन-जिन लोगोंने जाना-सुना, उन्हें भी भगवद्भक्ति प्रिय लगी, वे भी भजन-कीर्तन करने लगे। श्रीकृष्णदासजीकी पवित्र कीर्ति संसारमें फैल गयी।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

कृष्णदास ये सुनार राधाकृष्ण सुखसार, लियौ सेवा पाछे नृत्य गान बिसतारियै।
ह्वै करि मगन काहू दिन तन सुधि भूली, एक पग नूपुर सो गिर्‌यौ न सँभारियै॥
लाल अति रंग भरे जानी जति भंग भई पाँय निज खोलि आप बाँध्यौ सुख भारियै।
फेरि सुधि आई देखि धारा लै बहाई नैन कीरति यों छाई जग भक्ति लागी प्यारियै॥ ६११॥

परमधर्मपोषक संन्यासी भक्त

चितसुख टीकाकार भक्ति सर्बोपर राखी।
श्रीदामोदर तीर्थ राम अर्चन बिधि भाषी॥
चंद्रोदय हरिभक्ति नरसिंहारन्य जु कीनी।
माधौ मधुसूदन्न (सरस्वती) परमहँस कीरति लीनी॥
परबोधानँद रामभद्र जगदानँद कलिजुग्ग धनि।
परमधर्म प्रतिपोष कौं संन्यासी ये मुकुटमनि॥ १८१॥

श्रीचित्सुखानन्दजी सरस्वतीने श्रीभगवद्गीतापर चित्सुखी नामकी टीका लिखी, उसमें इन्होंने कर्म, ज्ञान आदिकी अपेक्षा हरिभक्तिको सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया। श्रीदामोदरतीर्थने रामार्चनविधिका वर्णन किया, उसमें भक्तिको महत्त्व दिया। श्रीनृसिंहारण्यजीने हरिभक्तिचन्द्रोदय नामक ग्रन्थ लिखा। श्रीमधुसूदनजी सरस्वतीने भक्तिरसायन आदि ग्रन्थ लिखे। श्रीमाधवानन्दजी भी भगवद्भक्त हुए। श्रीमाधवानन्दजी और श्रीमधुसूदनजीसरस्वती ये दोनों सत्-असत्-विवेकी परमहंस प्रसिद्ध थे। श्रीप्रबोधानन्दजी, श्रीरामभद्रजी और श्रीजगदानन्दजी भी कलियुगमें भगवद्भक्तिकी आराधना करके धन्यवादके योग्य हुए। इन सभी संन्यासी महानुभावोंने परमधर्म श्रीहरिभक्तिका प्रतिपादन और समर्थन किया। अतः ये संन्यासियोंके मुकुटमणि कहे गये॥ १८१॥

इनमेंसे कुछ भक्तोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

श्रीदामोदरतीर्थजी

ये भगवान् श्रीरामके परमभक्त थे। निरन्तर ध्यानमें मग्न रहा करते थे। एक बार आप ध्यानमग्न होकर श्रीसीताराम नामका जप कर रहे थे, उसी समय श्रीसीतारामजीने प्रकट होकर दर्शन दिया। आपके हृदयमें भक्तिका भाव और दृढ़ हो गया। परमानन्दमय प्रभुरूपमें आप मग्न हो गये। फिर आपके मनमें भाव आया कि यह दर्शन दूसरे भक्तोंको कैसे सुलभ हो। तब श्रीराघवेन्द्रजीने प्रेरणा की कि अर्चन-पद्धतिका वर्णन करो। उससे हमारा दर्शन सुलभ हो जायगा। आपके द्वारा लिखित रामार्चन-विधिसे अर्चन करके लोगोंने श्रीसीतारामजीका दर्शन पाया। इस प्रकार ग्रन्थोंका निर्माणकर आपने भक्तिपथ प्रदर्शित किया।

श्रीनृसिंहारण्यजी

आपको भक्ति अत्यन्त प्रिय थी। आपने 'हरिभक्तिचन्द्रोदय' नामक उत्तम ग्रन्थकी रचना की। उसमें जीवलोककी मुक्तिभूमिपर विवेकको राजा बताया। उसके शत्रु मोहसे विवेकका बड़ा-भारी युद्ध हुआ। शील, धर्म, सन्तोष और वैराग्य आदिको विवेकके सेनानी बताया। काम, क्रोध, लोभ और ममता आदिको मोहके सेनानी कहा। चिरकालतक भयंकर युद्धके पश्चात् मोह जीत गया और विवेककी सेना भाग खड़ी हुई। विवेककी एक श्रद्धा नामकी स्त्री थी। उसके गर्भमें प्रीति नामकी एक कन्या थी। उसी समय उसका जन्म हुआ और वह तत्क्षण बहुत बड़ी हो गयी। उसने ज्ञानरूपी खड्गको हाथमें लिया और सेनासहित मोहको मार भगाया। फिर विवेककी शक्ति जगी। उसके मरे सैनिक जी उठे। इस प्रकार भक्तिकी विजयका वर्णन करके आपने परमधर्मका पोषण किया।

श्रीरामभद्रजी

ये भगवान् श्रीरामके परमभक्त थे। चातुर्मास्य व्रतके लिये आप एक स्थानपर ठहरे। वहाँ आपके सदुपदेशोंको सुननेके लिये बहुत भीड़ एकत्र होती। वर्षा-ऋतुके बीत जानेपर आप वहाँसे चलनेके लिये तैयार हो गये; क्योंकि भीड़-भाड़ और प्रतिष्ठा आपको अच्छी नहीं लगती थी। भगवान्ने स्वप्न दिया कि वर्षाके बाद शरद्-ऋतुमें भी यहीं निवास करो और अपने उपदेशोंसे लोगोंमें भक्तिका प्रचार करो। आपने स्वप्नादेशका उल्लंघन कर दिया। उसे केवल अपने मनका विकार माना, भगवदादेश नहीं माना और आश्विन शुक्ल दशमी भी नहीं आने दी, प्रतिपदाको ही चल दिये। मार्गमें एक नदी मिली। आपने देखा कि पानी थोड़ा है, अतः पैदल ही उसे पार करनेके लिये उसमें घुसे। बीच धारमें पहुँचते ही जलकी बाढ़ आ गयी। तेज गहरी धारमें श्रीरामभद्रजी बहने और डूबने लगे। तब आपको भगवान् श्रीरामकी याद आयी, अपनी भूलपर पछताने लगे। शरीरका अन्तिम समय समझकर राम-नामका स्मरण करने लगे। तब श्रीरामने झट हाथ पकड़ लिया और बड़ी मधुर वाणीसे बोले—'तुमने मेरी आज्ञाको छोड़ा, अब मैं तुमको नदीके जलमें छोड़ रहा हूँ।' श्रीरामभद्रजीने कहा—'प्रभो! मैं अज्ञानी जीव, आपका शिशु अनुचित कर सकता हूँ, पर आप अपने स्वभावको नहीं छोड़ सकते हैं।' ऐसे दीनवचन सुनकर प्रभुने इन्हें नदीसे निकालकर तटपर खड़ा

कर दिया और स्वयं आप फिर नदीमें कूद पड़े। भगवत्स्पर्श और दर्शनसे कृतार्थ हुए श्रीरामभद्रजीसे नहीं रहा गया, ये भी नदीमें कूद पड़े। हँसकर प्रभुने इन्हें फिर निकाला और अपने दर्शनोंसे इनके मनोरथको पूर्ण किया। प्रेममग्न होकर आप पुनः उसी स्थानपर आ गये। सुनकर लोगोंकी भीड़ उमड़ पड़ी। आपने स्वप्नादेश और भगवत्कृपाका वर्णन करके सभीके मनमें भक्तिभाव भर दिया।

श्रीजगदानन्दजी

श्रीजगदानन्दजी भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त थे। आपकी जैसी भक्ति भगवान् श्रीरामके चरणोंमें थी, वैसी किसी विरले ही पुरुषमें होगी। आपमें वर्ण-आश्रम या विद्या आदिका अहंकार बिलकुल न था। वैष्णव सन्तको देखते ही उसके चरणोंमें सिर झुकाते, उसकी परिक्रमा करते और मधुर वाणीसे सत्कार करते हुए कहते कि 'आज मेरे धन्य भाग्य हैं, जो मुझे श्रीरामजीके प्यारे मिल गये।' भोजन-विश्रामादिके बाद उनसे प्रार्थना करते कि 'श्रीरामजीकी कोई कथा सुनाइये।' इस प्रकार सत्संगमें सर्वदा भगवत्कथाओंको कह-सुनकर परमधर्मका प्रचार-प्रसार करते। एकबार दो सन्त तीर्थयात्रा करते हुए काशीजीमें आये। वहाँ एक सन्त बीमार हो गये और उनका शरीर छूट गया। उसके वियोगमें दूसरा सन्त करुणक्रन्दन करने लगा—'हाय! मैं अचानक ही आपके सत्संगसे वंचित हो गया।' उसका विलाप सुनकर श्रीजगदानन्दजीसे नहीं रहा गया। निकट जाकर आपने उसे कृपाभरी दृष्टिसे देखा और उसके दुःखको दूर करनेके लिये उससे कहा—सन्तजी! आप विलाप न करें, ये मरे नहीं है। आपके साथ-साथ तीर्थयात्राको पूर्ण करके, अपने स्थानमें पहुँचकर आजसे एक माहके बाद शरीर त्यागकर वैकुण्ठको पधारेंगे। आपका स्पर्श पाकर सन्त उठ बैठे। दोनोंने आपको सिद्ध महापुरुष मानकर दण्डवत्प्रणाम किया। इस प्रकार आपने अनेकोंके संकट काटकर उन्हें परमधर्मका उपदेश दिया।

श्रीमधुसूदन सरस्वती

ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियं
ज्योतिः किञ्चन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते।
अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिरं
कालिन्दीपुलिनोदरे किमपि यन्नीलं महो धावति॥
वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

(मधुसूदनी गीताटी० तेरहवें अध्यायके प्रारम्भमें)

प्रमाणतोऽपि निर्णीतं कृष्णमाहात्म्यमद्भुतम्।
न शक्नुवन्ति ये सोढुं ते मूढा निरयं गताः॥*

(म०गी० पंद्रहवें अध्यायके अन्तमें)

ईसाकी लगभग सोलहवीं शताब्दीमें बंगालके फरीदपुर जिलेके कोटालपाड़ा ग्राममें प्रमोदन पुरन्दर नामक एक विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। उनके तृतीय पुत्र हुए कमलनयनजी। इन्होंने न्यायके अगाध विद्वान् गदाधरभट्टके साथ नवद्वीपके हरिराम तर्कवागीशसे न्यायशास्त्रका अध्ययन किया। काशी आकर दण्डिस्वामी श्रीविश्वेश्वराश्रमजीसे

* ध्यानके अभ्याससे जिनका चित्त वशमें हो गया है, वे योगी उस निर्गुण और निष्क्रिय परम ज्योतिको देखते हैं तो देखा करें। हमारे नेत्रोंको तो यमुनापुलिनविहारी नील तेजवाला साँवरा ही चिरकालतक सुख पहुँचाता रहे। जिसके हाथोंमें वंशी सुशोभित है, जो नव-नील-नीरद-सुन्दर है, पीताम्बर पहने है, जिसके ओठ बिम्बाफलके समान लाल-लाल हैं, जिसका मुखमण्डल पूर्ण चन्द्रके सदृश और जिसके नेत्र कमलवत् हैं, उस श्रीकृष्णसे परे कोई तत्त्व हो तो मैं उसे नहीं जानता। प्रमाणोंसे निर्णय देते हुए श्रीकृष्णके अद्भुत माहात्म्यको जो मूढ़ नहीं सह सकते, वे नरकगामी होंगे।

इन्होंने वेदान्तका अध्ययन किया और यहीं संन्यास ग्रहण किया। संन्यासका इनका नाम '**मधुसूदन सरस्वती**' पड़ा।

स्वामी मधुसूदन सरस्वतीको शास्त्रार्थ करनेकी धुन थी। काशीके बड़े-बड़े विद्वानोंको ये अपनी प्रतिभाके बलसे हरा देते थे। परंतु जिसे श्रीकृष्ण अपनाना चाहते हों, उसे मायाका यह थोथा प्रलोभन-जाल कबतक उलझाये रख सकता है। एक दिन एक वृद्ध दिगम्बर परमहंसने उनसे कहा—स्वामीजी! सिद्धान्तकी बात करते समय तो आप अपनेको असंग, निर्लिप्त ब्रह्म कहते हैं, पर सच बताइये, क्या विद्वानोंको जीतकर, आपके मनमें गर्व नहीं होता? यदि आप पराजित हो जायँ, तब भी क्या ऐसे ही प्रसन्न रह सकेंगे? यदि आपको घमण्ड होता है तो ब्राह्मणोंको दुखी करने अपमानित करनेका पाप भी होगा।' कोई दूसरा होता तो मधुसूदन सरस्वती उसे फटकार देते, परंतु उस संतके वचनोंसे वे लज्जित हो गये। उनका मुख मलिन हो गया। परमहंसने कहा—भैया! पुस्तकोंके इस थोथे पाण्डित्यमें कुछ रखा नहीं है। ग्रन्थोंकी विद्या और बुद्धिके बलसे किसीने इस मायाके दुस्तर जालको पार नहीं किया है। प्रतिष्ठा तो देहकी होती है और देह नश्वर है। यश तथा मान-बड़ाईकी इच्छा भी एक प्रकारका शरीरका मोह ही है। तुम श्रीकृष्णकी शरण लो। उपासना करके हृदयसे इस गर्वके मैलको दूर कर दो। सच्चा आनन्द तो तुम्हें आनन्दकन्द श्रीवृन्दावनचन्द्रके चरणोंमें ही मिलेगा।'

स्वामीजीने उन महात्माके चरण पकड़ लिये। दयालु संतने श्रीकृष्णमन्त्र देकर उपासना तथा ध्यानकी विधि बतायी और चले गये। मधुसूदन सरस्वतीने तीन महीनेतक उपासना की। जब उनको इस अवधिमें कुछ लाभ न जान पड़ा, तब काशी छोड़कर ये घूमने निकल पड़े। कपिलधाराके पास वही संत इन्हें फिर मिले। उन्होंने कहा—'स्वामीजी! लोग तो भगवत्प्राप्तिके लिये अनेक जन्मोंतक साधन, भजन, तप करते हैं और फिर भी बड़ी कठिनतासे उन्हें भगवान्‌के दर्शन हो पाते हैं, पर आप तो तीन ही महीनेमें घबरा गये।' अब अपनी भूलका स्वामीजीको पता लगा। ये गुरुदेवके चरणोंपर गिर पड़े। काशी लौटकर ये फिर भजनमें लग गये। प्रसन्न होकर श्रीश्यामसुन्दरने इन्हें दर्शन दिये।

अद्वैतसिद्धि, सिद्धान्तबिन्दु, वेदान्तकल्पलतिका, अद्वैत-रत्न-रक्षण, प्रस्थानभेदके लेखक इन प्रकाण्ड नैयायिक तथा वेदान्तके विद्वान्‌ने श्रीकृष्णकी शरणागति लेकर और उनके प्रेममें परिपूर्ण होकर भक्तिरसायन, गीताकी गूढार्थदीपिका नामक व्याख्या और श्रीमद्भागवतकी व्याख्या लिखी। ये कहते हैं—यह ठीक है कि अद्वैत ज्ञानके मार्गपर चलनेवाले मुमुक्षु मेरी उपासना करते हैं, यह भी ठीक है कि आत्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करके मैं स्वाराज्यके सिंहासनपर आरूढ़ हो चुका हूँ, किंतु क्या करूँ, एक कोई गोप-कुमारियोंका प्रेमी शठ है, उसी हरिने बलपूर्वक मुझे अपना दास बना लिया है।

अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन॥

श्रीप्रबोधानन्दजी

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपादका जन्म एक श्रेष्ठ ब्राह्मणकुलमें हुआ। इनके पूर्वज आन्ध्रप्रदेशके निवासी श्रीसम्प्रदायी वैष्णव थे। श्रीरंगक्षेत्रसे प्रभावित होकर उसके निकट कावेरी तटपर बसे बेलंगुरीगाँवमें आकर सपरिवार निवास करने लगे। इनके ज्येष्ठ भ्राताका नाम श्रीवेंकटभट्ट और मध्यम भ्राताका नाम श्रीत्रिमल्लभट्ट था। श्रीगोपालभट्ट श्रीवेंकटभट्टजीके सुपुत्र थे। श्रीगौरांग महाप्रभु तीर्थयात्राके व्याजसे प्रेमाभक्तिका वितरण करते हुए दक्षिणदेशमें पधारे। तब श्रीवेंकटभट्टने उन्हें अपने घरपर चातुर्मास्य बितानेके लिये आग्रहपूर्वक रखा। फिर भट्टपरिवार महाप्रभुजीके प्रेमसे प्रभावित होकर उनके पदाश्रित हो गया। सरस्वतीपाद बाल्यकालमें अति प्रतिभाशाली थे, अतः अल्पवयस्‌में ही अनेक शास्त्रोंका अध्ययनकर सुप्रसिद्ध विद्वान् हो गये और

संसारकी कटुताका अनुभवकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश किये बिना ही काशी आकर उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया और प्रकाशानन्द सरस्वतीके नामसे विख्यात हुए। इनकी विद्वतासे प्रभावित होकर अनेक विद्वान् छात्र इनसे विद्या लाभ करने लगे। वेदान्त-पुराण आदिकी व्याख्या सुनकर काशीवासी विद्वान् और संन्यासी इनपर मुग्ध हो गये। विन्दुमाधवके निकट इनका मठ था। आप अद्वैतवादके प्रधान आचार्यपदपर प्रतिष्ठित होकर उसका प्रचार-प्रसार करने लगे। आपके शिष्योंकी संख्या दस हजारके लगभग थी।

श्रीमन्महाप्रभु अद्वैतवादी एवं कुतर्कियोंको प्रेम प्रदान करते हुए श्रीनीलाचल पधार चुके थे। वहाँ राजा प्रतापरुद्रकी प्रेरणासे श्रीवासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्य निवास करते थे। ये भी प्रकाशानन्दके समान अद्वितीय विद्वान् तथा इनसे पूर्ण परिचित थे। इनके पास अनेक वेदान्ती संन्यासी वेदान्तभाष्यका अध्ययन किया करते थे। ये भी गौरांगदेवसे प्रभावित हुए और मायामूलक वेदान्तभाष्यका खण्डन श्रीमहाप्रभुके मुखसे सुनकर इनका विद्याभिमान चूर-चूर हो गया। षड्भुज महाप्रभुका दर्शन करके तो इन्होंने पूर्ण रूपसे प्रभुचरणोंमें आत्मसमर्पण ही कर दिया और उनके अनुयायी बन गये। यह बात जब प्रकाशानन्दजीने सुनी तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने महाप्रभुको कोई इन्द्रजाली समझा। धीरे-धीरे इन्हें यह भी ज्ञात हुआ कि मेरे पूर्वाश्रमके भ्राता और भतीजा आदि भी श्रीकृष्णचैतन्य संन्यासीके रंगमें रँग गये। उसमें कौन-सा ऐसा गुण है, जो सबपर मोहिनी डाल देता है। नाचता-गाता और हँसता है, यह कैसा संन्यासी है! इनका मन रीझ उठा और अब ये अद्वैत मतके समर्थनके साथ-साथ भक्तिके अनुष्ठानोंकी निन्दा करने लगे कि भक्ति तो भावुकों या स्त्रियोंका धर्म है। दुर्बलचित्त अज्ञानियोंने उसकी कल्पना कर ली है। ज्ञानी या पुरुष होकर नाचना-गाना लज्जाजनक है, इससे तो मर जाना अच्छा है।

यद्यपि प्रकाशानन्दजी विद्वान् थे, त्याग-वैराग्यकी पराकाष्ठापर पहुँचे हुए थे। बहुत-से संन्यासियोंके गुरुपदपर प्रतिष्ठित थे। किंतु मान-अपमान, ईर्ष्या-द्वेष आदि त्यागी विद्वान्के भी समाप्त नहीं होते हैं। केवल **'अहं ब्रह्मास्मि'** या **'सोऽहं'**की रट लगाकर कोई मायासे छुटकारा नहीं पा सकता है, जबतक प्रभु-शरणागत न हो। प्रकाशानन्दजी सोचते थे कि यदि मेरे सामने एक बार आ जाय, मेरी वेदान्त व्याख्या सुन ले, तो निश्चय ही उसका नाचना-गाना छूट जायगा। ये अपनी भावनाओंका संवरण न कर सके और गौरांगदेवपर अपना प्रभाव जमानेके लिये उन्होंने एक पत्रमें निम्नलिखित श्लोक लिखकर एक यात्रीके हाथ नीलाचल प्रभुके पास भेज दिया—

यत्रास्ते मणिकर्णिकामलसरः स्वर्दीर्घिका दीर्घिका
रत्नं तारकमक्षरं तनुभृते शम्भुः स्वयं यच्छति।
तस्मिन्नद्भुतधामनि स्मररिपोर्निर्वाणमार्गे स्थिते
मूढोऽन्यत्र मरीचिकासु पशुवद् प्रत्याशया धावति॥

अर्थात् जहाँ मणिकर्णिका नामक निर्मल सरोवर है और श्रीगंगा-सरीखी पवित्र नदी है तथा जिस स्थानपर स्वयं श्रीशंकरजी सभी प्राणियोंको [मोक्षप्रद] तारकमन्त्ररत्न प्रदान करते हैं। कामदेवके रिपु श्रीशिवजीके ऐसे अद्भुत धामको, जो मोक्षमार्गमें स्थित है, उसे छोड़कर अन्यत्र अज्ञानी पशुवत् मूर्ख मनुष्य ही सुखकी आशासे मृगमरीचिकामें दौड़ता है। तात्पर्य यह कि काशीमें आकर रहनेसे मोक्ष मिलेगा और अन्यत्र रहनेसे भवसागरमें डूबना पड़ेगा। श्रीमहाप्रभुजीने बड़े आदरके साथ पत्रको लिया, पर श्लोक पढ़कर प्रसन्नता नहीं हुई। पत्र-प्रेषकके सम्मानार्थ श्रीगौरांगदेवने उसी यात्रीके हाथ उत्तरस्वरूप निम्नलिखित श्लोक लिखकर भेज दिया—

घर्माम्भो मणिकर्णिका भगवतः पादाम्बु भागीरथी
काशीनां पतिरर्धमस्य भजते श्रीविश्वनाथः स्वयम्।

एतस्यैव हि नाम शम्भुनगरे निस्तारकं तारकं
तस्मात् कृष्णपदाम्बुजं भज सखे श्रीपाद निर्वाणदम्॥

हे सखे! मणिकर्णिकाका जल भगवान्के श्रीअंगका स्वेद है और श्रीगंगाजी उन्हींके श्रीचरणोंका जल—चरणामृत है। इसीसे काशीपति विश्वनाथ उसे अपने मस्तकपर धारण करते हैं और वे स्वयं भगवान्का अर्द्धांग हैं और उनका भजन करते हैं। इन्हीं भगवान्के नाम-मन्त्रको प्रदानकर शंकरजी काशीमें सभी प्राणियोंको मोक्ष प्रदान करते हैं, इसलिये हे श्रीपाद! मोक्षदायक श्रीकृष्णके चरण-कमलोंका भजन कीजिये। श्रीप्रकाशानन्दजी इसका कुछ भी खण्डनात्मक उत्तर तो दे नहीं सके। तब महाप्रभुके प्रसाद-ग्रहणपर आपत्ति उठाकर उन्होंने पुनः एक यह श्लोक लिखकर भेजा—

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना-
स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवा-
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद् विन्ध्यस्तरेत् सागरम्॥

विश्वामित्र, पराशर आदि मुनिगण जो केवल वायु, जल एवं पत्ते खानेवाले थे, वे भी स्त्रीके मनोहर मुख-कमलको देखकर मोहित हो गये। तब जो लोग घी, दूध और दहीसे युक्त शालि चावलका नित्यप्रति भोजन करते हैं, वे यदि अपनी इन्द्रियोंपर निग्रह कर लें तो समझो कि विन्ध्याचल पहाड़ समुद्रपर तैर गया। अर्थात् उक्त प्रकारका भोजन करनेवाले आप जितेन्द्रिय नहीं हो सकते हैं, अतः निश्चित है कि विषयी हैं, संन्यासी नहीं। इस श्लोकको पढ़कर श्रीमहाप्रभुने निष्प्रयोजन समझकर कुछ भी उत्तर नहीं दिया। परंतु प्रभुके किसी भक्तने यह उत्तर लिख भेजा—

सिंहो बली द्विरदशूकरमांसभोजी संवत्सरेण कुरुते रतिमेकवारम्।
पारावतः खलु शिलाकणमात्रभोजी कामी भवेन्नुदिनं वद कोऽत्र हेतुः॥

बलवान् सिंह हाथी और शूकर आदिके मांसका भक्षण करता है, किंतु सिंहनीके साथ वर्षमें एक बार ही रति करता है। परंतु कपोत मात्र-शिलाकणोंको खाकर भी प्रतिदिन कामी बना रहता है। बताइये, इसका क्या कारण है? इस उत्तरको पाकर वे निरुत्तर हो गये। श्रीवासुदेव सार्वभौमजीको जब इसका पता लगा तो वे क्षुब्ध हो गये और उन्होंने प्रभुसे अनुमति लेकर काशी आकर इन्हें समझाना-फटकारना चाहा, पर प्रभुने निषेध कर दिया।

सम्वत् १५७० में श्रीगौरांगदेव श्रीवृन्दावनकी यात्रा करते समय काशीमें पधारे। अपने भक्त तपनमिश्र और चन्द्रशेखरकी इच्छासे कुछ दिन ठहरे। काशीके एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण प्रकाशानन्दके भक्त थे। महाप्रभुके दर्शनकर और उनका कीर्तन सुनकर इनके अनन्य भक्त बन गये। एक दिन उन्होंने प्रकाशानन्दके सामने महाप्रभुके अष्ट सात्त्विक विकारोंका वर्णन किया और उनकी प्रशंसा की। उसे सुनकर उपहास करते हुए वे बोले—हाँ! हाँ! मैंने भी सुना है, चैतन्य नामका भावुक संन्यासी है। वह हीन सम्प्रदायका है, इन्द्रजाली है, मूर्ख है, उसे तो अपने धर्मका भी ज्ञान नहीं है। इसने सार्वभौमको पागल बना दिया, पर यहाँ काशीमें उसकी भाव-कालिमा किसीपर नहीं चढ़ेगी। यह सुनकर उस ब्राह्मणको बड़ा कष्ट हुआ। सारा वृत्तान्त उसने महाप्रभुजीको आकर सुनाया और कहा कि उन्होंने केवल चैतन्य-चैतन्य ही कहा, आपका पूरा नाम भी सादर नहीं लिया। श्रीमहाप्रभुने कहा वे मायावादी हैं, अतः उनके मुखमें श्रीकृष्ण-नाम कैसे आ सकता है? कुछ दिन काशीमें निवासकर आप श्रीवृन्दावनकी ओर चल दिये। श्रीप्रकाशानन्दने जब यह सुना तो वे प्रसन्न होकर बोले—मैंने जो कहा था, वही हुआ, मेरे डरके मारे वह मेरे पासतक नहीं आ सका। मेरा विश्वास है कि अब वह काशीमें आयेगा ही नहीं और यदि आयेगा भी तो क्या कर लेगा, पर तुम लोग सावधान

रहना, उसके पास भूलकर भी न जाना। ज्ञानी संन्यासीके मुखसे ऐसी बातें सुनकर सज्जनोंके प्राण रो उठते।

श्रीवृन्दावनकी यात्रा करके पुनः श्रीमन्महाप्रभु काशीजीमें पधारे और तपन मिश्रके घरपर ठहरे। गौरभक्त चाहते थे कि प्रभुकृपा सभीको प्राप्त हो। महाराष्ट्रीय ब्राह्मणने सोचा कि प्रकाशानन्दजीने अभी प्रभुके दर्शन नहीं किये हैं, इसीसे निन्दा करते हैं। यदि एक बार उनसे मिलन हो जाय तो उनकी कुमति नष्ट हो जायगी। इस प्रकार दोनों महापुरुषोंको मिलानेके लिये उस ब्राह्मणने काशीके सभी संन्यासियोंको भिक्षाके लिये निमन्त्रण दिया। श्रीमहाप्रभु ऐसे किसी भोज-भण्डारेमें जानेके इच्छुक न थे, पर वे कई भक्तोंके प्रेमाग्रहको टाल न सके। चलनेके लिये तैयार हो गये। इस समाचारको सुनकर लोग तरह-तरहकी बातें करने लगे। निर्धारित समयपर सभी संन्यासी इस उत्सुकतासे आये कि देखें उस संन्यासीको, जिससे प्रभावित होकर लोग उसे ही भगवान् मानने लगते हैं। कुछ लोग शास्त्रार्थ सुनने, मिलनके दृश्य एवं उसके परिणामका साक्षात्कार करने आये। श्रीप्रकाशानन्दजी ऊँचे सिंहासनपर आकर विराजे। चारों ओर बैठा दण्डी संन्यासियोंका समुदाय उनकी शोभा और महिमाको बढ़ा रहा था। उसी समय श्रीमन्महाप्रभु अपने भक्तोंसहित पधारे। उनके महाज्योतिर्मय, दिव्य भव्य-स्वरूपको देखकर सभी लोग प्रभावित हो गये और कितने तो उठकर खड़े हो गये। प्रभुने सभीकी वन्दना की। पाद-प्रक्षालनके बाद वहीं गीली धरतीपर ही बैठ गये। इनकी इस निरभिमानिता, दीनताको देखकर प्रकाशानन्द सिंहासनपर बैठे नहीं रह सके। उनका अहंकार चूर हो गया। शीघ्र ही वे उठकर आये और श्रीप्रभुका हाथ पकड़कर बोले—'आप यहाँ क्यों बैठ गये? चलिये, सभामें ही विराजिये।' ऐसा कहकर वे इन्हें सम्मानपूर्वक लाये और अपने समीप आसनपर उन्हें बैठाया। दर्शन और स्पर्शसे प्रकाशानन्दके मनसे द्वेष दूर हो चुका था।

श्रीप्रभुने कहा—मैं तो हीन (भारती) सम्प्रदायका संन्यासी हूँ। अपनेको उत्तम सम्प्रदायी संन्यासियोंके बीचमें बैठनेयोग्य नहीं समझता हूँ। प्रकाशानन्दजीने कहा—आप केशव भारतीके शिष्य हैं, सम्प्रदायी संन्यासी हैं और धन्य हैं। मुझसे दूर रहनेका कोई कारण नहीं, आप काशीमें रहें। आप संन्यासी होकर नृत्य-गान करते रहते हैं—ऐसा क्यों? संन्यासीका धर्म तो वेदान्तपाठ और ब्रह्मचिन्तन है, प्रभाव तो आपका दिव्य है, फिर ऐसा ही आचरण क्यों? प्रभुने कहा—सुनिये, श्रीपाद! मुझे मूर्ख जानकर मेरे गुरुदेवने मुझे वेदान्तपाठका उपदेश नहीं दिया। उन्होंने श्रीकृष्ण-मन्त्र और नामको बताकर इसे ही जपने और कीर्तन करनेकी आज्ञा दी। कलिकालमें भगवन्नामको छोड़कर दूसरा कर्म-धर्म नहीं है। नाम ही सबकी गति है। ऐसा उपदेश पाकर मैं नाम-जप और कीर्तन करने लगा। इससे पागल हो गया, रोने-गाने और नाचने लगा। इसे देखकर गुरुदेवने कहा कि भगवन्नामका परम फल प्रेम है और नाचना-गाना आदि उसीके विकार हैं। मैं अपनी स्वेच्छासे नहीं नाचता-गाता हूँ। महाप्रभुकी मधुर वाणी सुनकर चित्त कुछ-कुछ आकृष्ट हुआ, वे सोचने लगे कि यह युवक महान् व्यक्ति, मृदुभाषी और सुबोध भी है। यदि मेरे पास कुछ दिन रह जाय तो वेदान्तमें इसकी रुचि हो जायगी, फिर यह महापुरुष हो जायगा। ऐसा विचारकर प्रकाशानन्दने फिर कहा—नाम-कीर्तन और प्रेम तो ठीक है, पर आप वेदान्त क्यों नहीं पढ़ते-सुनते?

श्रीप्रभुने कहा—'यदि मैं इसका उत्तर दूँ, तो आपको दुःख हो जायगा।' नहीं, नहीं आपके मधुर वचन मुझे अमृतवत् प्रिय लग रहे हैं। आप कहिये—ऐसी प्रकाशानन्दकी बात सुनकर श्रीप्रभुने कहा—वेदान्तसूत्र ईश्वरके वचन हैं, उनमें भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा एवं करणापाटव आदि दोष नहीं हैं। उपनिषद् प्रमाणोंसे समर्थित तत्त्वको सूत्र कहता है। मुख्यवृत्तिमें उसका अर्थ करनेसे उसकी प्रमाणताकी रक्षा होती है। शांकरभाष्यमें गौणीवृत्तिसे ही सूत्रोंका अर्थ किया गया है, अतः उसकी प्रमाणता नष्ट हो गयी। उसके श्रवणसे ब्रह्म-जीवके सेव्य-सेवक भावकी हानि होती है, अतः वह भक्तिविरोधी है। इसमें लेखकका दोष भी नहीं है, प्रभुने जैसा लिखाया उन्होंने लिख दिया। मैं उसका अधिकारी नहीं हूँ। ऐसा कहकर प्रभुने कई सूत्रोंके

अनुकूल-प्रतिकूल अर्थ प्रस्तुत किये। जिसका प्रतिवाद प्रकाशानन्दजी नहीं कर सके। उनकी मनोवृत्ति बदल गयी। उन्होंने प्रार्थना की—आपने अपनी मधुर वाणीसे जो कुछ कहा, वह सत्य है। आपके भावोंको जाने बिना हमने जो कुछ कहा या समझा, वह ठीक नहीं था। आप क्षमा करें। इसके बाद सभी भोजनकर अपने स्थानोंको चले गये। यत्र-तत्र-सर्वत्र इस संवादकी चर्चा होने लगी। प्रकाशानन्दका हृदय द्रवीभूत हो गया था, अतः प्रभुके वाक्य और उनकी रूपमाधुरीमें ही मन मग्न रहने लगा। एक दिन श्रीप्रभु माधवजीका दर्शन करने गये। वहाँ प्रेमाविष्ट होकर नृत्य और कीर्तन करने लगे। उसे सुनकर प्रकाशानन्दजी भी आ गये। श्रीप्रभुकी तत्कालीन अवस्थाको देखकर उन्होंने प्रभुके चरण पकड़ लिये। प्रभुने कहा—'आप जगद्गुरु हैं, ऐसा न करें। अधीर सरस्वतीपादने कहा—मैं आपकी शरणमें हूँ, यह सुनकर श्रीप्रभुने उनका आलिंगन कर उनपर कृपा की। अब ये गौर-कृष्णके प्रेममें निमग्न हो गये। इन्हें प्रभुने प्रबोधानन्द यह नाम दिया, नाम-कीर्तन और श्रीवृन्दावन-वासकी आज्ञा दी।

श्रीमहाप्रभु नीलाचलकी ओर एवं श्रीप्रबोधानन्दपाद सरस्वती श्रीवृन्दावनकी ओर चले और सं० १५७१ में श्रीवृन्दावन आ पहुँचे। यहाँ श्रीलोकनाथ, श्रीभूगर्भ गोस्वामी, श्रीरूप-सनातन आदिसे मिलकर हर्षित हुए। श्रीगोपालभट्टको देखकर तो बहुत ही सन्तुष्ट हुए। श्रीवृन्दावनके रसिकोंका निरन्तर सत्संग एवं श्रीवृन्दावन धाम तथा लीलाकी माधुरीका आस्वादन करते हुए संस्कृत काव्योंमें उसका वर्णन करने लगे। इनके ग्रन्थोंको पढ़नेवाले आनन्द-रसोन्मत्त होकर झूम उठते हैं। श्रीगौरगणोद्देशमें कहा गया है कि—'**तुंगविद्या व्रजे यासीत् सर्वशास्त्रविशारदा। सा प्रबोधानंदयति गौरोद्गानसरस्वती॥**' ब्रजलीलामें सर्वशास्त्रविशारदा जो तुंगविद्या है, नवद्वीपलीलामें वही गौरगुणगायक श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती हुए हैं। जैसे जय-विजय आसुरी भावमें आये और उनके सहारे भगवान्ने असंख्य असुरोंका कल्याण किया। इसी प्रकार इन्हें प्रथम मायावादमें आविष्कर श्रीमहाप्रभुने असंख्य मायावादियोंका उद्धार किया। श्रीलालदासकृत बंगला भक्तमालमें लिखा है कि—
'**प्रकाशानन्द सरस्वती नाम तार छिल। प्रभु ई प्रबोधानंद बलिया राखिला॥**'

श्रीरसिक-अनन्यमालमें लिखा है कि श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती बड़े-भारी विद्वान् एवं काशीके निवासी थे। शास्त्रार्थमें इन्होंने उद्दण्ड विद्वानोंको जीता। काशीसे आकर श्रीवृन्दावनके सभी ठाकुरद्वारे देखे और अनेकों आचार्योंके दर्शन किये। परंतु उनके मत आपको अच्छे नहीं लगे। श्रीपरमानन्दजी रसिकसे मिले और सत्संग करके सन्तुष्ट हुए, पर नित्यविहारकी बात आपके मनमें नहीं आयी। फिर शास्त्रों-पुराणोंमें वर्णित मानसरोवरकी महिमा सुनकर कुछ श्रद्धा हुई। तब ये वैशाखी पूर्णिमाकी रातमें जाकर वहाँ रहे। गोधन देखकर प्रसन्नता हुई, उसके बाद वहाँ उदासी दिखायी पड़ी। दो घड़ी रात गये वहाँ भयानक दृश्य दिखायी दिये। फिर सिंह-सिंहिनीका गर्जन सुनकर शंकित हुए। उसके बाद नाग-नागिनने दर्शन दिये। पश्चात् पवनने बुहारी लगायी और बादलोंने छिड़काव किया। शीतल-मन्द-सुगन्ध समीरके स्पर्शसे श्रीप्रबोधानन्दजीको निद्रा आ गयी। श्रीकुंजबिहारीने इन्हें अनधिकारी समझकर मथुराकी कुटीमें पहुँचा दिया। जागनेपर आपको विश्वास हुआ, आपने परमानन्दजीसे मिलकर सारा वृत्तान्त कहा और प्रार्थना की कि आप हमें नित्य विहार-रस प्रदान कीजिये। तब इन्होंने इस रसके दानी श्रीहितहरिवंश महाप्रभुके चरणोंकी सेवाकी सम्मति दी। श्रीप्रबोधानन्दजीने श्रीहितजीके दर्शन किये। इन्होंने कृपा करके रसोपासनाकी पद्धति बतायी और नित्यविहारके दर्शन करा दिये। तब श्रीप्रबोधानन्दजीने हित-स्तुति-अष्टक एवं श्रीवृन्दावनशतकादि ग्रन्थोंकी रचना की। उसमें नित्यविहार-रसकेलिका वर्णन किया और अनन्य निष्ठापूर्वक श्रीवृन्दावनधाममें वास किया।

श्रीप्रबोधानन्दजी बड़े रसिक एवं प्रेमानन्दमें विभोर रहनेवाले महान् सन्त और आनन्दकन्द श्रीगौरांग महाप्रभुके प्रिय सेवक थे। आपने श्रीवृन्दावनविहारिणी बिहारीजीकी नित्य नयी-नयी निकुंज-लीलाओंका अनुभव करके उनका अपने ग्रन्थोंमें वर्णन किया तथा प्रिया-प्रियतमकी अनुपम रूप-माधुरीके

मधुर रसका पानकर उन्हें अपने नेत्रोंकी पुतली बना लिया। श्रीवृन्दावन-महिमामृत आदि ग्रन्थोंमें आपने श्रीवृन्दावनधामके वाससे मिलनेवाले दिव्य सुखको प्रकाशित किया। इस प्रकार व्रजरसके परमानन्दसागरको भावुकोंके लिये सुलभ किया तथा भगवद्भक्तिविहीन कर्म-धर्मोंके आचरणको आपने त्याज्य बताया। आपके द्वारा वर्णित रससिद्धान्तको पढ़-पढ़कर एवं सुन-सुनकर करोड़ों भक्तोंने प्रेमरंग प्राप्त किया। श्रीवृन्दावनधामका वास आपको ऐसा प्रिय लगा कि आपने उसपर अपना तन-मन और धन—सर्वस्व न्यौछावर कर दिया।

श्रीप्रियादासजीने श्रीप्रबोधानन्दजीके इस वृन्दावन-प्रेमका इस प्रकार वर्णन किया—

श्रीप्रबोधानन्द, बड़े रसिक आनन्दकन्द, श्री 'चैतन्यचन्द' जू के पारषद प्यारे हैं।
राधाकृष्ण कुञ्ज केलि, निपट नवेलि कही, झेलि रसरूप, दोऊ किये दृग तारे हैं॥
वृन्दावन वास कौ हुलास लै प्रकास कियौ, दियौ सुख सिन्धु, कर्म धर्म सब टारे हैं।
ताहि सुनि सुनि कोटि कोटि जन रङ्ग पायौ, विपिन सुहायौ, बसे तन मन वारे हैं॥ ६१२॥

श्रीद्वारकादासजी

सरिता कूकस गाँव सलिल में ध्यान धर्‌यो मन।
राम चरन अनुराग सुदृढ़ जाकें साँचो पन॥
सुत कलत्र धन धाम ताहि सों सदा उदासी।
कठिन मोह को फंद तरकि तोरी कुल फाँसी॥
कील्ह कृपा बल भजन के ग्यान खड्ग माया हनी।
अष्टांग जोग तन त्यागियो द्वारकादास जानै दुनी॥ १८२॥

सन्त श्रीद्वारकादासजी 'कूकस' नामक गाँवके निकट बहनेवाली नदीके जलमें प्रवेश करके भजन-ध्यान करते थे। श्रीरामचन्द्रजीके श्रीचरणोंमें आपका सुदृढ़ अनुराग था। आपने प्रतिज्ञापूर्वक भगवान्‌की उपासना की। आप स्त्री, पुत्र, घर और धनसे सदा विरक्त रहे। यद्यपि मोहका बन्धन कठिन होता है, परंतु आपने अपने विवेकसे उसे तोड़-फोड़ डाला। अपने गुरुदेव श्रीकील्हदेवाचार्यजीकी कृपा एवं भगवद्भजनके बलसे आपने ज्ञानरूपी तलवारसे अविद्या-मायाका नाशकर अष्टांगयोगकी विधिसे नदीमें शरीरको छोड़ा और साकेतधामको प्राप्त किया। इस बातको दुनिया जानती है॥ १८२॥

श्रीपूर्णजी

उदै अस्त परबत्त गहिर मधि सरिता भारी।
जोग जुगति बिस्वास तहाँ दृढ़ आसन धारी॥
ब्याघ्र सिंह गुँजै खरा मनहिं कछु संक न मानैं।
अर्ध न जातैं पौंन उलटि ऊरध कों आनैं॥
साखि सब्द निर्मल कहा कथिया पद निर्बान।
पूर्न प्रगट महिमा अनँत करिहै कौन बखान॥ १८३॥

श्रीपूर्णजीकी महिमा अपार है, कोई भी उसका वर्णन नहीं कर सकता है। आप उदयाचल और अस्ताचल—

इन दो ऊँचे पर्वतके बीच बहनेवाली सबसे बड़ी (श्रेष्ठ) नदीके समीप पहाड़की गुफामें रहते थे। योगकी युक्तियोंका आश्रय लेकर और प्रभुमें दृढ़ विश्वास करके समाधि लगाते थे। व्याघ्र, सिंह आदि हिंसक पशु वहीं समीपमें खड़े गरजते रहते थे, परंतु आप उनसे जरा भी नहीं डरते थे। समाधिके समय आप अपान वायुको प्राणवायुके साथ ब्रह्माण्डको ले जाते थे, फिर उसे नीचेकी ओर नहीं आने देते थे। आपने उपदेशार्थ साक्षियोंकी, मोक्षपद प्रदान करनेवाले पदोंकी रचना की। इस प्रकार मोक्षपदको प्राप्त श्रीपूर्णजीकी महिमा प्रकट थी॥ १८३॥

श्रीपूर्णजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीपूर्णजी भगवत्कृपाप्राप्त श्रीरामभक्त सन्त थे। एक बार आपका शरीर अस्वस्थ हो गया। आपको औषधिके लिये औँगरा (एक जड़ी)-की आवश्यकता थी। इनके मनकी बात जानकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने एक ब्राह्मणका रूप धारण किया और औँगरा लाकर दिया, जिससे ये स्वस्थ हो गये। भगवत्कृपाका अनुभव करके आप प्रेम-विभोर हो गये। आश्रमसे कुछ दूरपर नगर था, वहाँ यवन बादशाह रहता था। उसकी कन्याने श्रीपूर्णजीका दर्शन किया तो वह अत्यन्त ही प्रभावित हो गयी। उसने अपने पितासे कहा कि मैं दूसरे किसीके साथ व्याह न करूँगी। संसारी सुखोंकी मुझे बिल्कुल इच्छा नहीं है। आप मुझे श्रीपूर्णजीकी सेवामें रख दीजिये। बादशाहने श्रीपूर्णजीके पास आना-जाना प्रारम्भ किया और अपनी दीनतासे उन्हें प्रसन्न कर लिया। किसी दिन आपने उससे कहा कि चाहो सो माँग लो। तब उसने यही वरदान माँगा कि मेरी कन्याको आप अपनी सेवामें रख लीजिये। यह अन्यत्र नहीं जाना चाहती है। आपने कहा कि हम विरक्त साधु हैं, अपना धर्म छोड़कर उसे संसारी सुख नहीं दे सकते हैं। वह मेरे निकट रहकर भजन-साधन कर सकती है। यवन-कन्याकी भी यही इच्छा थी, अतः वह आपके पास रही। आप पूर्ण अकाम थे, अतः इस परीक्षामें उत्तीर्ण हुए। कुछ काल बाद यवन-कन्या सत्संग-लाभ लेकर सद्गतिको प्राप्त हो गयी।

श्रीपूरनजीका नाम श्रीअग्रदेवजीके शिष्योंमें आया है। एक बार आप स्वर्णरेखा नदीके तटपर स्थित पीपलकी छायामें विराजे थे। भगवत्स्मरण करते हुए शान्त-एकान्तमें आपको निद्रा आ गयी। वृक्षकी खड़खड़ाहटसे आपकी नींद खुली तो आपने एक वानरको पीपलपर इधर-उधर कूदते देखा। उसी समय वानरके मुखसे **'दासोऽहं राघवेन्द्रस्य'** यह स्पष्ट सुनायी पड़ा। साक्षात् श्रीहनुमान्जी हैं, यह जानकर आपने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और हनुमदाज्ञासे उसे पवित्र स्थल जानकर आपने वहीं अपना निवासस्थान बनाया और वहाँ श्रीहनुमान्जीकी प्रतिमा स्थापित की। भगवन्नाम-जपके प्रभावसे आपमें सर्वसिद्धियाँ आ गयीं। सुख-शान्तिके निमित्त आनेवाले जनसमुदायके मनोरथ पूर्ण होने लगे। आपकी प्रसिद्धि हो गयी।

वह अकबरका शासन-काल था। दुष्ट यवन हिन्दू धर्ममें अनेक प्रकारसे बाधा करते थे। साधुका सुयश न सह सकनेवाले यवन अधिकारियोंने आदेश दिया कि शंख-घण्टानाद मत करो। आपने सुनी-अनसुनी कर दी। सायंकालको आपने जैसे ही शंखध्वनि की, कई सिपाहियोंके साथ मुस्लिम थानेदार इनायत खाँ पकड़ने आ गया, पर पकड़ न सका, क्योंकि मन्दिरके चारों ओर बड़े-बड़े बन्दरोंकी भीड़ थी। सब निराश लौट गये। दूसरे दिन शंख बजते ही वे लोग पुनः पकड़ने आये तो उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। बाबाजीका छिन्न-भिन्न मृत शरीर देखकर वे खुश हुए और लौट चले। अभी वे चौकीपर पहुँचे भी न थे कि पुनः शंख बजा। वापस आकर देखा तो फिर वही दृश्य। इनायत खाँने इनकी सिद्धियोंका चमत्कार अकबरको लिख भेजा। उसे पुत्रकी कामना थी, अतः एक दिन वह हाथीपर चढ़कर आया।

श्रीपरमानन्दाचार्यजीने सब कुछ जान लिया। उसे सदल-बल सन्तके पास आते देखकर अहंकारी अनधिकारी समझा। आप जिस चौकीपर बैठे थे, उसके सहित उड़कर आकाशमें हाथीके हौदेसे ऊपर स्थित हो गये और बोले—'गर्व छोड़ो, सम्पत्ति और राज्य नश्वर हैं। हिन्दू-मुस्लिम सभी तुम्हारे लिये समान हैं। मुझ सन्तके आशीर्वादसे तो पुत्र भी सन्त हो जायगा। अतः तुम सलीम शाह चिस्ती (फतेहपुर सीकरी)-

के पास जाकर उनसे आशीर्वाद प्राप्त करो। श्रीपरमानन्दाचार्यके रूपको देखकर अकबरको विराट्-स्वरूपका ध्यान हो आया और तब उसने हाथ जोड़कर कहा—आप पूर्णवैराठी हैं।' तभीसे आपका यह नाम प्रसिद्ध हो गया। पूर्वाश्रममें आपका नाम परमेश्वर प्रसाद था। श्रीअनन्तानन्दाचार्यके प्रशिष्य खेमदासजीसे आपने सं० १५७५ में विरक्त दीक्षा ली। ग्वालियरमें आपकी गद्दी है। आपने सं० १६६१ में कालूरामाचार्यको दीक्षा दी। आपके द्वारा संस्थापित श्रीहनुमान् मन्दिर आपके शिष्यों-प्रशिष्योंके द्वारा अधिक समृद्ध हुआ। इसे ग्वालियर राज्यसे जागीर भी मिली थी। इसी परम्परामें श्रीगंगादासजीके नामपर संस्थापित गंगादासजीकी बड़ी शाला ग्वालियरमें प्रसिद्ध है।

श्रीलक्ष्मणभट्टजी

सदाचार मुनिबृत्ति भजन भागवत उजागर।
भक्तनि सों अति प्रीति भक्ति दसधा को आगर॥
संतोषी सुठि सील हृदय स्वारथ नहिं लेसी।
परम धर्म प्रतिपाल संत मारग उपदेसी॥
श्रीभागवत बखानि कै नीर छीर बिबरन कर्‌यौ।
श्रीरामानुज पद्धति प्रताप भट्ट लच्छिमन अनुसर्‌यौ॥ १८४॥

श्रीलक्ष्मणभट्टजीने श्रीरामानुज-सम्प्रदायकी पद्धतिके अनुसार भगवान्‌की सेवा-पूजाका अनुसरण किया। आप महान् सदाचारी, मुनियोंकी-सी वृत्ति स्वीकार करके जीवनमें धारण करके जीवन-यापन करनेवाले, भजन-परायण और यशस्वी भगवद्भक्त थे। भगवद्भक्तोंमें आपका बड़ा भारी स्नेह था। आपके हृदयमें दशधा भक्तिका निवास था। आप परम सन्तोषी, बड़े शीलवान् थे। नाममात्रका भी स्वार्थ आपमें नहीं था। जिससे भगवद्भक्ति दृढ़ हो, उस परम धर्मका पालन करनेवाले तथा सन्तोंका जो मार्ग है, उसके आप उपदेशक थे। श्रीमद्भागवतकी कथाएँ कहकर आपने सत् और असत्‌का उसी प्रकार विवेचन किया, जैसे हंस नीर और क्षीरका करता है। इस प्रकार श्रीभट्टजीने असत्‌को छोड़कर सत् अर्थात् भगवत्-शरणागतिको ग्रहण किया॥ १८४॥

श्रीलक्ष्मणभट्टजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीलक्ष्मणभट्टजी सन्त थे। आप श्रीमद्वल्लभाचार्यके पिता एवं श्रीरामानुज-सम्प्रदायमें दीक्षित थे। एक बार आपने एक भक्त शिष्यके यहाँ श्रीमद्भागवतकी कथा कही, उसमें प्रचुर भेंट आयी। ज्यौं-की-त्यौं सम्पूर्ण भेंट सन्त-सेवाके निमित्त एक साधुको समर्पित कर दी। लोभसे कथाका सार चला जाता है। यथा—**'कारिताकणलोभेन कथा सारस्ततो गतः।'** (भा० मा०) आप केवल उपकार और सन्तसंगकी भावनासे कथा कहते थे अतः उसमें नीर-क्षीर (सत-असत्)-का विवेक हो जाता था, अतः मूलमें कहा कि—***'श्रीभागवत बखानि कै नीर छीर बिबरन कर्‌यौ।'*** एक बार राजाने आपको श्रीभागवत-कथाके लिये आमन्त्रित किया, उन्हीं तिथियोंमें किसी सन्तने कथाके लिये कहा। आप सन्तके यहाँ गये, राजाके यहाँ नहीं गये। ऐसे सन्त-प्रेमी और निर्लोभी थे आप।

एकबार यात्रा करते हुए कहीं मार्गमें ठहरे। समय होनेपर श्रीठाकुरजीके लिये भोग बनाया। इसी बीच कई यवन वहाँ आ गये, आपने मना किया कि इधर मत आइये। आपके स्पर्शसे तथा छाया पड़नेसे सामग्री ठाकुरजीके भोगयोग्य नहीं रहेगी। वे लोग अड़ गये कि हम तो बैठेंगे। तुम हमारा क्या कर लोगे? आप चुप रहे, उन्होंने रसोई छू ली। आप वहाँसे चले गये, दूसरी जगह जाकर पुनः रसोई बनायी। भट्टजीकी

रसोई अपवित्र करके वे लोग बहुत प्रसन्न हो रहे थे। कुछ देरके बाद उनके पेटमें पीड़ा होने लगी और मल-मूत्रसे उनके वस्त्र दूषित हो गये। अब इन्हें सन्तके प्रभावका पता पड़ा। विवश होकर ये सब श्रीभट्टजीके पास आये और दूरसे ही प्रार्थना करने और माफी माँगने लगे। आपको रोष था ही नहीं। सभीने कहा—महाराज! मुझे मेरे अपराधका जो चाहिये वह दण्ड दीजिये। तब आपने कहा कि इस ग्रामके सभी साधु-ब्राह्मणोंको भोजन करानेके लिये धन दो और उनसे माफी माँगो तब उन्होंने ऐसा ही किया। फिर सभी पीड़ारहित और शान्त हो गये तथा भक्त-भगवत्सेवाके लिये धन अर्पणकर चले गये। साधु-ब्राह्मणोंने भोजन किया, आपकी कीर्तिका विस्तार हुआ।

स्वामी श्रीकृष्णदासजी पयहारी

कृष्नदास कलि जीति न्यौति नाहर पल दीयो।
अतिथि धर्म प्रतिपाल प्रगट जस जग में लीयो॥
उदासीनता अवधि कनक कामिनि नहिं रातो।
राम चरन मकरंद रहत निसि दिन मदमातो॥
गलतें गलित अमित गुन सदाचार सुठि नीति।
दधीचि पाछें दूसरी (करी) कृष्णदास कलि जीति॥ १८५॥

महान् सिद्धसन्त पयहारी श्रीकृष्णदासजी जयपुरमें श्रीगलताजीकी गद्दीपर विराजते थे। आप अनन्त दिव्य गुणोंसे सम्पन्न, बड़े सदाचारी और अच्छे नीतिज्ञ थे। श्रीदधीचिजीके बाद इस कलियुगमें उत्पन्न होकर कलिकालके विकारोंपर आपने विजय प्राप्त की। अतिथिके रूपमें प्राप्त सिंहको आपने न्यौता दिया और अपने शरीरमेंसे मांस काटकर उसे भोजनके लिये अर्पण किया। इस प्रकार विलक्षण रूपसे अतिथिधर्मका पालन करके आपने सुयश प्राप्त किया। आप वैराग्यकी तो सीमा ही थे और कभी भी धन और स्त्रियोंमें आसक्त नहीं हुए। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंके परागमें आपका मन उसी प्रकार आनन्दित रहता था, जैसे पुष्परसको पाकर भ्रमर मतवाला हो जाता है॥ १८५॥

स्वामी श्रीकृष्णदासजी पयहारीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

एक बार पयहारी श्रीकृष्णदासजी महाराज अपनी गुफामें विराजमान थे, उसी समय द्वारपर एक सिंह आकर खड़ा हो गया। आपने विचार किया कि 'आज तो अतिथि-प्रभु पधारे हैं।' उनके भोजनके लिये आपने अपनी जाँघ काटकर मांस सामने रख दिया और प्रार्थना की—'प्रभो! भोजन कीजिये।' धर्मकी बहुत बड़ी महिमा है और उसका पालन करना बहुत ही कठिन है। इनकी सच्ची धर्मनिष्ठाको देखकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे नहीं रहा गया, उन्होंने प्रकट होकर दर्शन दिया; क्योंकि आपका भाव बिलकुल सत्य था। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करके जाँघका दुःख न जाने कहाँ चला गया। संसारमें लोग अतिथिको अन्न-जल देनेमें ही कष्टका अनुभव करते हैं, तब इस प्रकार अपने शरीरका दान कौन कर सकता है! आपके इस चरित्रको सुनकर लोगोंके मनमें महान् आश्चर्य होता है।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

बैठे हैं गुफा में, देखि सिंह द्वार आय गयौ, लयौ यों बिचारि हो अतिथि आज आयौ है।
दई जाँघ काटि डारि, कीजियै अहार अजू, महिमा अपार धर्म कठिन बतायौ है॥

दियौ दरसन आय, साँच में रह्यो न जाय, निपट सचाई, दुख जान्यौ न बिलायौ है।
अन्न जल देबै ही कों झींखत जगत नर, करि कौन सकै जन मन भरमायौ है॥ ६१३॥

श्रीगदाधरदासजी

लाल बिहारी जपत रहत निसि बासर फूल्यौ।
सेवा सहज सनेह सदा आनँद रस झूल्यौ॥
भक्तनि सों अति प्रीति रीति सबही मन भाई।
आसय अधिक उदार रसन हरि कीरति गाई॥
हरि बिस्वास हिय आनि कै सपनेहुँ आन न आस की।
भली भाँति निबही भगति सदा गदाधरदास की॥ १८६॥

श्रीगदाधरदासजीकी भक्तिका सर्वदा निर्वाह हुआ, उसमें कभी भी कोई बाधा नहीं उपस्थित हुई। आप श्रीबिहारीलालजीके नामोंका जप करते हुए दिन-रात प्रफुल्लित ही रहते थे। भक्त-भगवन्तकी सेवामें आपका सहज स्नेह था। उसीके आनन्दमें सर्वदा झूमते रहते थे। भक्तमें आपका बड़ा भारी अनुराग था। आपकी सन्त-सेवाकी रीति सभीको अच्छी लगती थी। आप मन-बुद्धिसे परम उदार थे और जिह्वासे सदा भगवान्‌की कीर्तिका गान किया करते थे। हृदयमें केवल भगवान्‌का विश्वास और भरोसा रखकर आपने स्वप्नमें भी किसी दूसरेकी आशा नहीं रखी॥ १८६॥

श्रीगदाधरदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीगदाधरदासजी श्यामसुन्दरके प्रेममें ऐसे डूबे कि उनका घर, धन और परिवार सब कुछ छूट गया। परमविरक्त हो गये। कुछ दिन इधर-उधर घूम-फिरकर आप महाराष्ट्रमें ताप्ती नदीके तटपर बुरहानपुरको आये और उसीके निकट एक बागमें आसन लगाकर बैठ गये। लोगोंने आपसे बहुत अनुनय-विनय करके कहा—'प्रभो! गाँवमें चलकर किसी मन्दिरमें रहिये।' परंतु उनके कहनेसे आप गाँवमें नहीं गये। उसका कारण यह कि आपको एकान्तमें ही सुख था। भगवद्भजनको छोड़कर दूसरी किसी कामनासे आपका कोई प्रयोजन न था। एक बार कई दिनोंतक लगातार वर्षा होती रही, उससे आपका शरीर और वस्त्र भीग गये। इनके कष्टको देखकर प्यारे श्यामसुन्दरने अत्यन्त मीठे स्वरमें एक भक्त सेठसे कहा—तुम्हारे घरमें बहुत-सा धन भरा हुआ है, तुम श्रीगदाधरदासजीके लिये और उनके ठाकुरजीके लिये एक सुन्दर मन्दिर बनवाओ और उन्हें लाकर उस मन्दिरमें रखो।

भगवान्‌की आज्ञा पाकर उस सेठ भक्तने सुन्दर विशाल मन्दिर बनवाया और भगवान्‌की आज्ञाको सुनाकर (संत-सेवार्थ) बहुत आग्रह किया, तब बड़ी मुश्किलसे आप उस मन्दिरमें आये। आपने उस मन्दिरमें भगवान्‌के श्रीविग्रहकी स्थापना की और उनका नाम 'श्रीलालबिहारीजी' रखा। श्रीठाकुरजीके सुन्दर मधुर स्वरूपको देख-देखकर आप सर्वदा उसी आनन्दमें विभोर रहते। बड़े प्रेमके साथ आप सन्तोंकी सेवा करते, इनकी सेवासे सन्तजन बहुत प्रसन्न होते और सन्तोंको सुखी देखकर आप भी प्रसन्न रहते। सन्त-भगवन्तकी सेवाके लिये जो भी कुछ सामान आता था, आप उसे उसी दिन सेवामें लगा देते, बासी अन्न-धन दूसरे दिनके लिये नहीं रखते। एक बार रसोइयाने छिपाकर कुछ सामान रख रखा था। संयोगवश आश्रममें कई सन्त आ गये। तब श्रीगदाधरदासजीने अपने रसोइयासे कहा—कुछ सामान हो तो उसीसे रसोई बनाकर प्रेमपूर्वक इन साधु-सन्तोंको भोजन करा दो।

शिष्य रामदास और वेंकटदास रसोइयाने श्रीगदाधरदासजीसे कहा—'श्रीठाकुरजी भूखे न रहें, इसलिये मैंने भोगके लिये कुछ थोड़ी-सी सामग्री बचाकर रखी है।' आपने कहा कि 'उसे निकालो और सन्तोंको खिला दो, प्रातःकाल कहीं-न-कहींसे कुछ और आयेगा।' रसोइयाने आपकी आज्ञाके अनुसार रसोई बनाकर सन्तोंको प्रसाद पवाया। श्रीगदाधरदासजीने भी सन्तोंका प्रसाद लिया और बहुत बड़े सुखका अनुभव किया। सन्त-सेवामें इनके प्रेमको देखकर उन सन्तोंने प्रसन्न होकर कहा कि 'आपके पवित्र सुयशको सारा संसार गायेगा।' सबेरा हुआ, पर कहींसे कुछ भोगके लिये सामान नहीं आया। तीन पहर बीत गये, श्रीठाकुरजी भूखे ही रहे, उन्हें भोग नहीं लगा। इससे रसोइयाको क्रोध हुआ, वह कहने लगा—'न जाने कब परमात्मा हमको ऐसे गुरुसे और इस दुःखसे छुड़ायेगा।' उसी समय किसी भक्त सेवकने आकर दो सौ रुपये श्रीगदाधर-दासजीको भेंट किये। तब आप बोले—इन रुपयोंको इसके माथेपर पटक दो। देखें, यह कितना खाता है।

श्रीगदाधरदासजीकी इस बातको सुनकर वह सेठ डर गया, उसने सोचा कि शायद महाराजजी मेरे ऊपर रुष्ट हो गये हैं। पश्चात् श्रीगदाधरदासजीने समझाकर उसका समाधान किया। तब तो वह बहुत ही प्रसन्न हुआ और भक्त-भगवन्तके भोगमें जितना सामान लगता, नित्य उसे देता। इस प्रकार वह सेवा करके सुख प्राप्त करने लगा। साधु-सेवामें उसकी श्रद्धा अब और बढ़ गयी। कुछ दिन बुरहानपुरमें रहनेके बाद आयुको थोड़ी जानकर श्रीगदाधरदासजी वहाँसे चलकर मथुराजी आ गये और वहीं रहकर परमानन्ददायिनी व्रजलीलाओंके मधुर रसका आस्वादन करने लगे। इस प्रकार आपने श्रीबिहारिणी-बिहारीजीकी तथा साधुओंकी प्रेमसे सेवा की। उनके श्रीचरणकमलोंमें अपने मनको भलीभाँति लगाया।

श्रीप्रियादासजी श्रीगदाधरदासजीके इस सन्तप्रेमका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

बुरहानपुर ढिग बाग तामें बैठे आय करि अनुराग गृह त्याग पागे स्याम सों।
गाँव मैं न जात, लोग किते हाहा खात, सुख मानि लियौ गात, नहीं काम और काम सों॥
पर्‌यौ अति मेह, देह बसन भिजाय डारे, तब हरि प्यारे बोले स्वर अभिराम सों।
रहै एक साह भक्त कही जाय ल्यावौ उन्हें मन्दिर करावौ तेरौ भर्‌यौ घर दाम सों॥ ६१४॥
नीठि नीठि ल्याये हरि बचन सुनाये जब, तब करवायौ ऊँचौ मन्दिर सँवारिकै।
प्रभु पधराये, नाम 'लाल' औ 'विहारी' स्याम अति अभिराम रूप रहत निहारिकै॥
करैं साधु सेवा जामें निपट प्रसन्न होत, बासी न रहत अन्न सोवैं पात्र झारिकै।
करत रसोई जोई राखी ही छिपाय सामा आये घर सन्त, आप कही ज्याँवौ प्यारिकै॥ ६१५॥
बोल्यौ प्रभु भूखे रहैं ताके लिये राख्यौ कछू भाष्यो तब आप काढ़ौ भोर और आवैगौ।
करिकै प्रसाद दियौ लियौ सुख पायौ सब सेवा रीति देखि कही जग जस गावैगौ॥
प्रात भये भूखे हरि गए तीन जाम ढरि रहे क्रोध भरि कहैं कबधौं छुटावैगौ।
आयौ कोऊ ताही समै दो सत रुपैया धरे बोले गुरु 'सीस लै कै मारौ' कितौ पावैगौ॥ ६१६॥
डर्‌यौ वह साह, मति मोपै कछू कोप कियौ कियौ समाधान सब बात समुझाई है।
तब तौ प्रसन्न भयौ अन्न लगै जितौ देत, सेवा सुख लेत, साधु रुचि उपजाई है॥
रहे कोऊ दिन, पुनि मधुपुरी बास लियो, पियौ ब्रजरस लीला अति सुखदाई है।
लाल लै लड़ाए सन्त नीके भुगताए गुन जाने जिते, गाये, मति सुन्दर लगाई है॥ ६१७॥

श्रीनारायणदासजी

भक्ति जोग जुत सुदृढ़ देह निज बल करि राखी।
हिएँ सरूपानंद लाल जस रसना भाषी॥

परिचय प्रचुर प्रताप जान मनि रहस सहायक।
श्रीनारायन प्रगट मनो लोगनि सुखदायक॥
नित सेवत सन्तनि सहित दाता उत्तर देस गति।
हरि भजन सींव स्वामी सरस श्रीनारायनदास अति॥ १८७॥

स्वामी श्रीनारायणदासजी भगवद्भजनकी सीमा थे और आपका हृदय अति सरस था। आपने भक्तियोगसे युक्त सुदृढ़ शरीरको अपनी भक्तिके प्रतापसे स्वस्थ एवं भक्तिमय आचरण करनेयोग्य रखा। हृदयमें श्रीगोपाललालके सुन्दर रूपके ध्यानका आनन्द लेते हुए आप जिह्वासे उनके सुयशका वर्णन करते रहते थे। भक्तिके प्रतापसे आपके द्वारा अनेक चमत्कार प्रकट हुए। सुजानशिरोमणि श्यामसुन्दर रहस्यमय ढंगसे आपकी सहायता करते थे। इसी तरह आप सबके सहायक थे। श्रेष्ठज्ञानी होनेके कारण आप रहस्यका बोध कराकर साधककी सहायता करते थे। विश्वका कल्याण करनेके लिये मानो स्वयं नारायणभगवान्‌ने ही अवतार लिया था। आप बड़े प्रेमके साथ सन्तोंकी सेवा करते थे। उत्तराखण्ड और उत्तर प्रदेशमें निवास करनेवालोंको आपने उपदेश देकर उन्हें सद्गति प्रदान की॥ १८७॥

श्रीनारायणदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

महात्मा श्रीनारायणदासजी पहले बदरिकाश्रममें निवास करते थे, फिर वहाँसे श्रीमथुरापुरीको चले आये। यहाँ पुरीका दर्शन करके आपको बड़ा भारी सुख मिला। आप श्रीकेशवदेवजीके द्वारपर रहने लगे। आपने मनमें विचार किया कि मन्दिरमें दर्शन करनेके लिये जो लोग आते हैं, उन्हें भगवान्‌के दर्शनोंका आनन्द अच्छी प्रकारसे नहीं मिलता है, क्योंकि उनके मनमें जूतोंके चोरी चले जानेका भय बना रहता है, इसलिये मैं दर्शनार्थियोंके जूतोंकी रखवाली किया करूँ तो इन भक्तोंको भगवद्दर्शनका पूरा-पूरा आनन्द मिलेगा। ऐसा निश्चयकर आप जूतोंकी रखवाली करने लगे। इससे दर्शनार्थी और स्वयं आप भी आनन्दित हुए। दूसरे लोग आपके प्रभावको तथा आपकी सेवा-निष्ठाको नहीं जानते थे कि आपके हृदयमें सेवाका कैसा अपार भाव भरा है। एक बार एक दुष्ट आया और उसने एक बड़ी-सी पोटली आपके सिरपर रख दी और कहा कि इसे ले चलो। आप बिना किसी ननु-नचके पोटली लादकर उसके साथ चल दिये।

जब श्रीनारायणदासजी उस दुष्टकी पोटलीको सिरपर लिये जा रहे थे तो उसी समय रास्तेमें एक कोई बड़े प्रतिष्ठित सज्जन मिल गये और उन्होंने श्रीनारायणदासजीको पहचान लिया। फिर बड़े अनुरागमें भरकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और उस दुष्टको बड़े जोरसे डाँटा-फटकारा। तब उस महादुष्टने भी आपकी महिमाको जाना और उसने भी इनके चरण पकड़ लिये। उसके मनमें बड़ा दुःख हुआ। उसका देहाभिमान छूट गया और वह पछताकर कहने लगा कि मुझसे बड़ी भारी भूल हुई। श्रीनारायणदासजीने उसे समझाते हुए कहा—'तुम्हारा काम हो रहा है, तुम अपने मनमें किसी बातकी चिन्ता मत करो।' यह सुनकर वह रोने लगा, उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। उसने प्रार्थना करते हुए श्रीनारायणदासजीसे कहा कि 'अब मैं घरका मुख नहीं देखूँगा। मुझे अपनी शरणमें रखिये।' उसके दैन्य-भावसे प्रसन्न होकर आपने उसे भगवद्भक्तिका उपदेश दिया। उसे भी मालूम हो गया कि भक्ति-जगत् कैसा होता है। साधु-सन्तोंमें क्या विशेषता है, उनकी कैसी क्षमा-शक्ति होती है। इस चरित्रका तात्पर्य यह है कि साधुजन मेघके समान समदर्शी और उदार होते हैं।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

आये बद्रीनाथ जू तें, मथुरा निहारि नैन, चैन भयौ, रहैं जहाँ केसौजू कौ द्वार है।
आवें दरसनी लोग जूतनि कौ सोग हिये रूप कौ न भोग होत कियौ यों बिचार है॥

करै रखवारी, सुख पावत है भारी, कोऊ जानै न प्रभाव, उर भाव सो अपार है।
आयो एक दुष्ट पोट पुष्ठ सो तौ सीस दई लई, चले मग ऐसौ धीरज कौ सार है॥ ६१८॥
कोऊ बड़ौ नर, देखि मग पहिचानि लिये किये, परनाम भूमि परि, भरि नेह कौ।
जानिकै प्रभाव, पाँव लीने महादुष्ट हूँ नै, कष्ट अति पायो छूट्यौ अभिमान देह कौ॥
बोले आप 'चिन्ता जिनि करौ, तेरौ काम होत', नैन नीर सोत 'मुख देखौं नहीं गेह कौ'।
भयौ उपदेश, भक्ति देस उन जान्यौं साधु सक्ति कौ विसेस, इहाँ जानौ भाव मेह कौ॥ ६१९॥

एक बार भक्तवर श्रीनारायणदासजीने उत्तराखण्डमें रहकर एकान्त गुफामें समाधि लगायी। संयोगवश श्वास ऊपर खींचते समय वायु कहीं उलझ गयी, अतः आपके शरीरमें रोग हो गया। इनके कष्टको देखकर नर-नारायण भगवान् पधारे और उन्होंने योगकी युक्तियोंको बताकर इनके कष्टको दूर किया। तबसे आपको योगसिद्धि हो गयी। उत्तराखण्डके एक गाँवमें एक धनी-मानी वैश्य रहता था। उसके वृद्धावस्थामें एक पुत्र हुआ। उसमें उसकी बड़ी-भारी आसक्ति हुई। किशोर-अवस्थाको प्राप्तकर उसकी मृत्यु हो गयी। इससे उस वैश्यको महान् कष्ट हुआ। वह मोहवश शवको संस्कारके लिये नहीं ले जाने दे रहा था। इसी बीच स्वामी श्रीनारायणदासजी सन्तोंके बीचसे उठकर भिक्षाके बहाने उस गाँवमें पहुँच गये। भीड़ देखकर आप भी उसके घरमें चले गये। पिता-माताके करुण-क्रन्दनको सुनकर आपका हृदय द्रवित हो गया। भगवत्-स्मरणपूर्वक जैसे ही आपने पुत्रके शरीरका स्पर्श किया, उसी समय उसमें प्राण आ गये। सभीने स्वामीजीके चरण पकड़ लिये। चमत्कारको देखकर सभी भगवद्भक्त बन गये।

श्रीभगवानदासजी

भजन भाव आरूढ़ गूढ़ गुन बलित ललित जस।
श्रोता श्रीभागवत रहसि ग्याता अच्छर रस॥
मथुरापुरी निवास आस पद सन्तनि इकचित।
श्रीजुत खोजो स्याम धाम सुखकर अनुचर हित॥
अति गंभीर सुधीर मति हुलसत मन जाके दरस।
भगवानदास श्रीसहित नित सुहृद सील सज्जन सरस॥ १८८॥

भक्त श्रीभगवानदासजी श्री (भक्ति)-से सम्पन्न थे। सभीके सुहृद, सुशील, सज्जन और परम रसिक थे। आप सर्वदा भजन-भावमें तत्पर रहते थे। गोप्य गुणोंसे युक्त भगवान्‌के मनोहर सुयशसे आपका हृदय परिपूर्ण था। श्रीमद्भागवतके रसिक श्रोता थे, चरित्रोंके गम्भीर रहस्य तथा अक्षर (अविनाशी)-के रसके ज्ञाता अनुभवी थे। आप श्रीमथुरापुरीमें निवास करते थे और एकाग्र मनसे एकमात्र सन्तोंके श्रीचरणोंकी आशा रखते थे। श्रीमान् खोजीजी एवं श्यामदासके परिवारको सुख देनेवाले तथा उनके हितकारी सेवक थे। आप अत्यन्त धीर-गम्भीर बुद्धिवाले एवं ऐसे प्रेमी भक्त थे कि आपके दर्शनमात्रसे मन प्रसन्न हो जाता था॥ १८८॥

श्रीभगवानदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीभगवानदासजी आमेरनरेश श्रीभारमलजीके पुत्र थे। इनकी माताका नाम राठौड़ रानी श्रीवदनादेवी था। आप दौसा (जयपुर)-के निकट लवाणके जागीरदार और अकबरके मनसबदार थे। महान् वीर एवं परमभक्त थे, अतः आपकी 'बाँकि राजा' की उपाधि थी। इनके वंशधर आज भी बाँकावत कहलाते हैं। इनके दो पुत्र थे—श्रीमोहनदासजी और अखयराजजी। श्रीभगवानदासजी मथुराके हाकिम थे। जो भी कोई

तिलक-कण्ठी धारण करके आता, उसको चुंगी माफ कर देते और भी सुविधाएँ दे देते। चुंगी बचानेके लोभसे यवन, जैनी आदि भी तिलक-कण्ठी धारण करके आते और बिना चुंगी दिये निकल जाते। धीरे-धीरे आमदनी कम हो गयी। तब लोगोंने बादशाहसे शिकायत की। स्वयं जहाँगीर आया और उसने घोषणा करा दी कि ***'माला तिलक न धारिये।'*** यदि कोई माला-तिलक धारण किये मिल जायगा तो उसे फाँसीकी सजा दी जायगी। लौकिक लाभके लिये बहुत वेशधारी थे, पर अब प्राण देनेवाला कोई नहीं दिखायी पड़ता था। धोखेमें कुछ पकड़े गये, उन्हें कारागारमें बन्द कर दिया गया। श्रीभगवानदासजीने विशाल और चमकीले द्वादश तिलक लगायें और तुलसीकी मोटी-मोटी कई मालाएँ धारण कीं, फिर बादशाहके दरबारमें पहुँचे। इन्हें देखकर (जहाँगीर) बादशाह कुपित होकर बोला—आप मेरी आज्ञाकी अवहेलना करनेके लिये, मुझे चिढ़ानेके लिये आज यह विशेष वेश बनाकर आये हैं। अब आपको अवश्य ही प्राणदण्ड दिया जायगा।

श्रीभगवानदासजीने कहा—मेरे भक्ति-शास्त्रोंमें लिखा है और सन्तजन भी कहते हैं कि तिलक-कण्ठी धारण किये हुए जो शरीर छोड़ता है, उसे वैकुण्ठकी प्राप्ति होती है। अन्तिम-संस्कारके समय भी तिलक लगाते हैं। इसलिये मैं आज प्राणदण्डको स्वीकारकर वैकुण्ठ-यात्राकी तैयारी करके आपके सामने आया हूँ। आज्ञाका उल्लंघनकर आपको चिढ़ानेका मेरा उद्देश्य नहीं है। यद्यपि प्रभुकी प्रतिज्ञा है कि यदि वातादि दोषोंके कारण मेरा भक्त मुझे भूल जाता है तो मैं उसका स्मरण करता हूँ, जिससे वह परम गतिको प्राप्त कर लेता है, पर प्रभुका निहोरा क्यों करें? कण्ठी-मालाके भरोसे शरीर क्यों न छोड़ें? यह सुनकर बादशाह प्रसन्न हो गया और बोला कि मैं परीक्षा ले रहा था। उसमें केवल एक आप सच्चे-खरे निकले। 'माँगो, आप क्या चाहते हो?' श्रीभगवानदासजीने कहा—मैं श्रीमथुराका निरन्तर निवास चाहता हूँ। दूसरी कोई सेवा अब हमें न दी जाय। मथुरासे बाहर जानेका आदेश न दिया जाय। प्रजापर चुंगीका भार अधिक है, उसे माफ किया जाय। तिलक-कण्ठीधारी जो गिरफ्तार किये गये हैं, उन्हें छोड़ दिया जाय। बादशाहने ऐसा ही किया। धामवास इसलिये माँगा कि इससे भक्तिके सभी अंगोंकी पुष्टि सहजमें सम्भव हो जाती है। इसके बाद आप मथुरा छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं गये। आपने श्रीगोवर्धनजीमें श्रीहरिदेवजीका लाल पत्थरका मन्दिर बनवाया, जो बड़ा ही दर्शनीय है।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

जानिबे कों पन, पृथीपति मन आई, यों दुहाई लै दिवाई माला तिलक न धारियै।
मानि आनि प्रान, लोभ, केतिकनि त्याग दिये, छिपे नहीं जात, जानी बेग मारि डारियै॥
भगवानदास उर भक्ति सुखरास भर्‍यौ कर्‍यौ लै सुदेस देस, रीति लागी प्यारियै।
रीझ्यौ नृप देखि, रीझ मथुरा निवास पायौ, मन्दिर करायौ 'हरिदेव' सों निहारियै॥ ६२०॥

श्रीभगवानदासजीका सत्संग पाकर रसखान और मीरमाधव आदि अनेकों भक्तोंकी वेषमें दृढ़-निष्ठा हो गयी। रसखानजी अपने गलेमें दो सौ मालाएँ धारण करते थे। एक बार जहाँगीरने उनसे पूछा कि हिन्दू-साधु भी इतनी मालाएँ नहीं पहनता है, फिर तुम इतनी क्यों पहनते हो? तब रसखानने यह दोहा पढ़ा—***'तन पावन जल अगम को तनक काठ करै पार। बड़े काठ ऊपर तरै जब तन पाहन भार॥'*** जो पवित्र हैं वे हल्के हैं, उन्हें थोड़ा काष्ठ भी पार कर देगा, पर मैं तो पापी पत्थरके समान भारी हूँ अतः मेरे लिए बड़ा काठ चाहिये। मीरमाधवजी प्रेमसे श्रीकृष्ण-नाम-संकीर्तन करते तो उसे सुननेके लिये बहुत-से लोग उनके पीछे-पीछे फिरते। किसी समय उनसे भी बादशाहने प्रश्न किया कि कीर्तन तो बहुत-से लोग करते हैं, पर तुम्हारे ही पीछे-पीछे लोग क्यों घूमते हैं? मीरमाधवने उत्तर दिया—***'मधुर वचन सुनि सुवा का काहु न अचरज होय। बोलनि कागा की मधुर सुनि धावै सब कोय॥'***

श्रीगोवर्धनमें श्रीकेशवाचार्यजीने ठाकुर श्रीहरिदेवजीको प्रकट किया और मानसी-गंगाके निकट एक पर्णकुटीमें पधराकर उनकी सेवा करने लगे। एक दिन श्रीहरिदेवजीने खीर भोग आरोगनेकी इच्छा प्रकट की। आचार्यने कहा—मैं तो आपकी सेवामें केवल भावद्रव्य ही समर्पित कर सकता हूँ, पर धनकी याचना किसीसे नहीं कर सकता हूँ। श्रीहरिदेवजीने कहा—तुम किसीसे माँगो मत, परंतु आये हुए धनको अस्वीकार मत करो। आजसे सातवें दिन राजा भगवानदास तुम्हारे पास आयेंगे। उनकी सेवा तुम्हारे द्वारा मैं स्वीकार करूँगा। श्रीहरिदेवजीने राजा भगवानदासको स्वप्न दिया कि मैं गोवर्धनमें हूँ और केशवाचार्यजीके प्रेमसे मेरा प्राकट्य हुआ। तुम मन्दिर बनवाओ और भोग-रागका समुचित प्रबन्ध करो। इस प्रकार श्रीहरिदेवजीकी आज्ञा पाकर श्रीभगवानदास श्रीकेशवाचार्यके समीप आये और लाल पत्थरका विशाल मन्दिर बनवाया। भोग-रागका प्रबन्ध किया।

श्रीकल्याणदासजी

जगन्नाथ को दास निपुन अति प्रभु मन भायो।
परम पारषद समुझि जानि प्रिय निकट बुलायो॥
प्रान पयानो करत नेह रघुपति सों जोर्‌यो।
सुत दारा धन धाम मोह तिनुका ज्यों तोर्‌यो॥
कौंधनी ध्यान उर में लस्यौ, राम नाम मुख जानकी।
भक्त पच्छ ऊदारता, यह निबही कल्यान की॥ १८९॥

भक्तोंका पक्ष लेना तथा उदारतापूर्वक सबसे व्यवहार करना—इन दोनों बातोंको श्रीकल्याणदासजीने जीवनभर निभाया। ये श्रीजगन्नाथजीके सेवक थे और सेवा करनेमें बड़े चतुर थे, अतः भगवान्‌को बहुत ही अच्छे लगते थे। भगवान्‌ने इन्हें अपना नित्य प्रिय पार्षद मानकर अपने पास बुला लिया। इन्होंने प्राण त्यागते समय स्त्री-पुत्र, धन-धामके महामोहको तृणके समान तोड़कर केवल भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे स्नेह जोड़ा और हृदयमें श्रीरामजीकी कौंधनी (करधनी)-का ध्यान तथा मुखसे श्रीसीतारामजीके नामका उच्चारण करते हुए सद्‌गति प्राप्त की॥ १८९॥

श्रीकल्याणदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीकल्याणजी सन्त-सेवी सद्‌गृहस्थ थे। आप ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुए थे और श्रीराघवेन्द्रसरकार आपके इष्टदेव थे। आपके पवित्र हृदयमें श्रीसीतारामजीका निवास था। सन्तोंको आप भगवान्‌का साक्षात् प्रतिनिधि मानते थे। एक बार आपके यहाँ कन्याका विवाह था। जाति-बिरादरीके साथ-साथ सन्तोंको भी आपने आमन्त्रित कर रखा था। जब भोजनका समय हुआ तो आपने सन्तोंकी पंगत पहले करा दी। इससे अन्य ब्राह्मण लोग बड़े असन्तुष्ट हुए और आपको बुरा-भला कहने लगे। उन लोगोंका कहना था कि इन साधुओंकी जाति-पाँतिका कोई पता नहीं है, आपने इन्हें कैसे पहले खिला दिया? इसपर आपने सबको समझाते हुए कहा कि सन्तोंका 'अच्युत' गोत्र होता है और ये विश्वका कल्याण करनेवाले होते हैं। सन्त धरा-धामपर साक्षात् भगवान् श्रीहरिके प्रतिनिधि होते हैं, अतः उनके पहले प्रसाद ग्रहण कर लेनेसे आप सबको असन्तुष्ट नहीं होना चाहिये। इस प्रकारकी इनकी सन्त-निष्ठा देखकर अन्य ब्राह्मण भी प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हो गये। आपके यहाँ सन्त-सेवा चल रही है, सुनकर और भी बहुत-से अनामन्त्रित सन्त भी आपके यहाँ आ पहुँचे। यह देखकर बिरादरीके लोग कहने लगे—अभी आपके घराती और बराती बाकी ही हैं,

अगर आप इन अनामन्त्रित सन्तोंको भोजन करा देंगे तो उनके लिये क्या बचेगा? इसपर आपने कहा— चिन्ता करनेकी बात नहीं है, सन्तोंको खिलानेसे कम नहीं पड़ता, सारी पूर्ति रामजी करेंगे। यह कहकर आपने सब सन्तोंको भोजन करा दिया, फिर जब घरातियों-बारातियोंको खिलानेकी बात आयी तो आपने पंगतमें सबको बैठवा दिया और परोसनेवालोंसे परोसनेको कहा। प्रभुकृपासे सभीने पूर्ण तृप्तिका अनुभव किया और भोजनमें किसी भी प्रकारकी न्यूनता नहीं आयी। सन्त-कृपाका ऐसा चमत्कार देखकर सब लोग धन्य-धन्य कह उठे।

एक बारकी बात है, श्रीकल्याणजी अपने भाईके साथ उत्सव-दर्शनार्थ श्रीधाम वृन्दावनको जा रहे थे। मार्गमें आपने देखा कि एक दुष्ट धनी सरावगी एक दीन वैष्णवको कुछ पैसोंके लिये डाँट-फटकार रहा है, दुःख दे रहा है। यह देखकर आपको बहुत दुःख हुआ। आपने न केवल उन वैष्णव महाभागका सारा कर्जा उतारकर उस दुष्ट सरावगीसे मुक्ति दिला दी, बल्कि उन्हें पर्याप्त धन-धान्य देकर सुखी भी कर दिया। ऐसे उदारमना थे श्रीकल्याणजी!

श्रीसन्तदासजी तथा श्रीमाधवदासजी

संतदास सदबृत्ति जगत छोई करि डार्‌यो।
महिमा महा प्रबीन भक्तिवित धर्म विचार्‌यो॥
बहुर्‌यो माधौदास भजन बल परचौ दीनो।
करि जोगिनि सों बाद बसन पावक प्रतिलीनो॥
परम धर्म बिस्तार हित प्रगट भए नाहिन तथा।
सोदर सोभूराम के सुनौ संत तिन की कथा॥ १९०॥

हे भगवद्भक्तजनो! श्रीस्वभूरामदेवाचार्यजीके दोनों सहोदर भाइयोंकी कथाका श्रवण कीजिये। सदाचार एवं सात्त्विक वृत्तिसे निर्वाह करनेवाले श्रीसन्तदास (संतरामजी)-ने इस जगत्‌को नीरस एवं निःसार वस्तु जान-मानकर उसे त्याग दिया। आप महामहिमावाले तथा प्रवीन (अर्थात् सत्य-असत्यका निर्णय करनेमें चतुर) थे, भक्तितत्त्वके ज्ञाता थे, अतः सोच-विचार करके उसे अपनाया। दूसरे भाई श्रीमाधवदासजीने भजनके प्रतापसे चमत्कार दिखाया और अभक्त योगियोंसे वाद-विवाद करके अपने वस्त्र जलती अग्निमें डालकर ज्यों-के-त्यों वापस कर लिये। परमधर्ममयी श्रीहरिभक्तिके प्रचार-प्रसारके लिये ही ये दोनों भाई प्रकट हुए। इन्होंने जैसा कार्य किया, वैसा दूसरा कोई नहीं कर सकता है॥ १९०॥

श्रीमाधवदासजी और श्रीसन्तदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीमाधवदासजी और श्रीसन्तदासजी दोनों सगे भाई थे। श्रीस्वभूराम देवाचार्यजीके आशीर्वादसे इन दोनोंका जन्म हुआ था। एक बार श्रीमाधवदासजीने नाथपंथी एक योगीके शिष्य एक राजाको दीक्षा देकर वैष्णव बना लिया। इससे वह कनफटा योगी बहुत नाराज हुआ और बोला कि तुमने ऐसा क्यों किया? आपने कहा—ब्रह्मा, शिव और इन्द्रादिसे पूजित होनेके कारण विष्णुभगवान् श्रेष्ठ हैं। उनके चरणोंसे गंगाकी उत्पत्ति हुई, जो त्रिलोकतारिणी अघहारिणी हैं; अतः किसी भी देवी-देवके उपासकको विष्णु-भक्तिका उपदेश देना उचित है, इससे वे देवगण अप्रसन्न नहीं होते हैं। इस सम्बन्धमें जोगीने श्रीमाधवदासजीसे बहुत वाद-विवाद किया, पर इनसे नहीं जीता, तब बोला कि हम अपने कानोंकी मुद्राएँ और सिंगीको अग्निमें डालते हैं, तुम अपनी कण्ठी-मालाको डालो। जिसकी वस्तुएँ जल जायँ, वह हारा और जिसकी न जलें, वह जीता माना जायगा। श्रीमाधवदासजीने कहा—तुलसी-मालाको हम अग्निमें नहीं डाल सकते हैं। हम अपना वस्त्र

डालेंगे। अग्निमें डालनेपर जोगीकी मुद्राएँ और सिंगी जल गयीं। परंतु इनका अँचला नहीं जला। हारकर उसने चरण पकड़े, क्षमा-प्रार्थना करके अनुयायी बना। उस योगीमें अग्नि-स्तम्भन सिद्धि थी। कई स्थानोंमें उसका प्रदर्शन कर चुका था, अतः उसे अहंकार था। भक्तिके सामने मायिक सिद्धियाँ व्यर्थ हो जाती हैं, इसलिये वह हार गया। उन दिनों हरियाणामें नाथोंका प्रभाव था, वे वैष्णव सन्तोंको टिकने नहीं देते थे। एक बार कई लोगोंने आपकी भजन-कुटीमें चारों ओरसे आग लगा दी, पर कुटी नहीं जली। भक्तिके ऐसे प्रभावको देखकर बहुत-से लोग आपके शिष्य बन गये।

एक बार श्रीसन्तदासजीके मनमें उत्कट वैराग्य उत्पन्न हुआ और ये जंगलमें जा विराजे। संसारियोंसे आप कुछ भी प्राप्त करनेकी आशा नहीं करते थे। बहुत-से ग्रामीण लोगोंने आपसे आकर कहा कि आप चलकर गाँवमें रहिये, वहाँ आपके भोजनादिका यथोचित प्रबन्ध हो जायगा। यहाँ जंगलमें कुछ भी प्रबन्ध नहीं हो सकता है। श्रीसन्तदासजीने कहा—मुझे तो श्रीगोविन्दजीकी आशा है। आप लोग मेरी चिन्ता न करें। यह सुनकर गाँवके लोग निराश होकर चले आये। आप वहीं भजनमें मग्न रहे। भगवान्ने नगरके हाकिमको आदेश दिया कि मेरा भक्त वनमें बैठा है, उसकी सेवा करो। उस हाकिमने बहुतसे मिष्टान्न-पक्वान्न लाकर आपको भोजन कराया। समीपमें चौकीदारोंको नियुक्त किया। इसके बाद आपकी महिमा बढ़ी। अनेक लोग दर्शन करने और उपदेश लेने आने लगे।

इस प्रकार आप दोनों भाइयोंने परमधर्मका विस्तार किया।

श्रीकन्हरदासजी

कृष्न भक्ति को थंभ ब्रह्मकुल परम उजागर।
छमासील गंभीर, सर्ब लच्छन को आगर॥
सर्बसु हरिजन जानि हृदय अनुराग प्रकासै।
असन बसन सनमान करत अति उज्ज्वल आसै॥
सोभूराम प्रसाद तें कृपादृष्टि सब पर बसी।
बूड़िए बिदित कन्हर कृपाल आतमाराम आगम दरसी॥ १९१॥

श्रीकन्हरदासजी बूड़िया ग्रामके निवासी, आत्मामें रमण करनेवाले, परम दयालु, शास्त्रोंके तथा भविष्यके द्रष्टा थे। आप श्रीकृष्णभक्तिके आधारभूत खम्भेके तुल्य थे तथा ब्राह्मणवंशमें प्रकट, अति प्रसिद्ध, क्षमाशील, गम्भीर एवं सभी शुभगुणोंसे सम्पन्न थे। भक्तोंको अपना सब कुछ जानकर उनके प्रति बड़ा अनुराग करते थे। भोजन-वस्त्र आदिसे सेवा तथा उनका बहुत सम्मान करते थे। आपका उद्देश्य बड़ा पवित्र था। गुरुदेव श्रीस्वभूरामजीकी कृपाका बल पाकर आपने सभी जीवोंके ऊपर कृपाकी वर्षा की॥ १९१॥

श्रीकन्हरदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीकन्हरदासजी पंजाब प्रान्तके बूड़िया ग्रामके निवासी थे। आप भविष्यद्रष्टा सन्त थे। भविष्यमें घटित होनेवाली घटनाओंकी जानकारी आपको पहले ही हो जाती थी और आप उन्हें अपने शिष्योंको बता देते थे। एक बार आपके यहाँ रसोई बन रही थी, अचानक आपने भण्डारीको आज्ञा दी कि बीस सन्तोंके लिये सामग्री और बढ़ा दो। भण्डारी और रसोइयेने आज्ञाका पालन किया और सचमुच पंगतके समय बीस मूर्तियाँ आ गयीं। इसी प्रकार आप प्रायः अपने यहाँ और अपने सेवकोंके यहाँ आनेवाले सन्तोंकी संख्या बता देते और उनकी बतायी संख्या सदैव सत्य होती।

श्रीगोविन्ददासजी भक्तमाली

रुचिरसील घननील लील रुचि सुमति सरित पति।
बिबिधि भक्त अनुरक्त ब्यक्त बहु चरित चतुर अति॥
लघु दीरघ सुर सुद्ध बचन अबिरुद्ध उचारन।
बिस्वबास बिस्वास दास परिचय बिस्तारन॥
जानि जगत हित सब गुननि सुसम नरायनदास दिय।
भक्त रतन माला सुधन गोबिंद कंठ बिकास किय॥ १९२॥

भक्तरत्नमाला (भक्तमाल)-रूपी उत्तम धन श्रीगोविन्ददासजीके कण्ठमें सुशोभित होकर वृद्धिको प्राप्त हुआ। इन्हें अनेक भक्तोंके दिव्य चरित कण्ठस्थ थे। अत्यन्त सुन्दर शील-स्वभाववाले तथा मेघके समान नील वर्णवाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रोंमें आपकी सहज ही रुचि थी। शुद्ध बुद्धिके तो आप समुद्र ही थे। सभी प्रकारके भक्तोंमें आपका परम अनुराग था और उन सबके चरित्रोंका वर्णन करनेमें आप अत्यन्त चतुर थे तथा श्रीभक्तमालको पढ़ते या गाते समय ह्रस्व-दीर्घ स्वरोंका यथावत् उच्चारण करते थे। चरित्रोंका वर्णन करनेमें वाक्य एवं शब्दोंकी इस प्रकार योजना करते थे कि उसमें विरोध न हो, अर्थकी संगतिमें बाधा न हो। आप सम्पूर्ण विश्वमें निवास करनेवाले भगवान् एवं उनके भक्तोंमें दृढ़ विश्वास रखते थे और भक्तोंके चमत्कारोंका विस्तारपूर्वक वर्णन करते थे। सभी जीवोंके हितमें तथा भक्त-भक्ति-भगवन्त और गुरुदेवकी सेवा-निष्ठा आदिमें श्रीनाभाजीने अपने समान जानकर 'भक्तरत्नमाल' रूप सम्पत्तिको इन्हें प्रदान किया, अतः ये श्रीभक्तमालके श्रेष्ठ प्रवक्ता प्रथम भक्तमाली हुए॥ १९२॥

श्रीजगतसिंहजी

श्रीजुत नृपमनि जगतसिंह दृढ़ भक्ति परायन।
परम प्रीति किए सुबस सील लक्ष्मीनारायन॥
जासु सुजसु सहजहीं कुटिल कलि कल्प जु घायक।
आग्या अटल सुप्रगट सुभट कटकनि सुखदायक॥
अतिही प्रचंड मार्तंड सम तम खंडन दोर्दंड बर।
भक्तेस भक्त भव तोषकर संत नृपति बासो कुँवर॥ १९३॥

भक्तोंके स्वामी जो भगवान् हैं, उनके महान् भक्त श्रीशिवको सन्तुष्ट करनेवाले भक्तराज श्रीजगतसिंहजी वासोदेईके सुपुत्र थे। आप राजाओंमें श्रेष्ठ, भक्तिमें दृढ़ निष्ठावाले भक्त थे। आपने अपनी सच्ची प्रीति तथा विनम्र स्वभावसे श्रीलक्ष्मीनारायणभगवान्‌को अपने वशमें कर लिया था। आपका सुयश कलियुगके दोष-पापोंको नष्ट करनेवाला है। आपकी आज्ञा अटल थी, उसका उल्लंघन करनेका साहस किसी भी योद्धा या दुष्टमें नहीं होता था। समरभूमिमें आपके पराक्रमको देखकर वीरोंकी सेनाएँ प्रसन्न हो जाती थीं और दूने उत्साहसे युद्ध करने लगती थीं। आपके भुजदण्ड प्रचण्ड सूर्यके तुल्य थे, उससे भयरूप अन्धकारका सर्वथा नाश हो जाता था॥ १९३॥

श्रीजगतसिंहजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

जोधपुरमें तहसील जैतारणमें बलूँदा नामक एक ग्राम है। प्रसिद्ध राठौड़ राव दूदाजीके पौत्र राव

जयमलजी थे। महाराणा प्रतापने चित्तौड़का किला इन्हींके सुपुर्द कर दिया था। इन राव जयमलजीके भाई राव चाँदाजीने बलूँदा ग्राम बसाया था और इसीको अपनी स्वतन्त्र रियासत बनायी थी। इनके पुत्र राव रामदासजी हुए और इन्हीं रामदासजीके पुत्र थे—भक्त राव श्रीजगतसिंहजी। राव जगतसिंहजी जोधपुरके प्रथम राजा महाराजा जसवन्तसिंहजीको अपना पूर्वज मानते थे। जगतसिंहजी परम वैष्णव भक्त थे। ये राजसी ठाट छोड़कर सदा साधुवृत्तिसे रहा करते थे। सदैव भगवान् श्रीश्यामजी (बलूँदामें गढ़के अन्दर श्रीमन्दिरके ठाकुरजी)-की सेवामें रहते। स्वयं अपने सिरपर उठाकर तालाब या बावलीसे सेवाके लिये जलका कलशा लाते। मेवाड़में श्रीरूपचतुर्भुज भगवान्का मन्दिर इन्होंने ही बनवाया था और उसकी सेवा-पूजाके लिये टीबड़ी नामक एक गाँव अपने पट्टेमेंसे अर्पण किया था, जो अबतक है। इन्हीं चतुर्भुजजीके पुजारी प्रसिद्ध श्रीदेवाजी थे, जिनके लिये भगवद्विग्रहके बाल सफेद हो गये थे।

भक्तवर राजा श्रीजगतसिंहजी श्रीलक्ष्मीनारायण-भगवान्की सेवामें पूर्णरूपसे तत्पर रहते थे, उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली थी कि भगवान्का डोला सदा अपने साथ रखूँगा। तदनुसार डोला आपके साथ ही रहता। जब आप युद्ध करनेके लिये लड़ाईके मैदानमें जाते तो आप आगे रहते और डोला पीछे रहता। इसके अतिरिक्त जब कभी आप किसी यात्रामें जाते तो आगे-आगे भगवान्का डोला रहता और सेवककी तरह आप पीछे-पीछे चलते। आपके हृदयमें श्रीठाकुरजीकी सेवाका ऐसा उत्साह था कि सेवाके लिये नित्य जल भरकर घड़ेको अपने सिरपर रखकर लाते। आपकी इस प्रतिज्ञाको सुनकर जयसिंह और जसवन्तसिंहको बड़ी प्रसन्नता हुई। एक बार दिल्लीमें सभी राजा लोग इकट्ठे हुए। वहाँ श्रीयमुनाजलका घड़ा गाजे-बाजेसहित सिरपर रखकर लाते हुए श्रीजगतसिंहको जयसिंह और जसवन्तसिंहने देखा तो धरतीपर लेटकर प्रणाम किया। फिर विनती करते हुए कहा—'वस्तुतः आपका शरीर धारण करना ही सफल है; क्योंकि आपने शरीरसे सेवा करके भगवत्प्रेमको प्राप्त कर लिया।' इस प्रकार इनकी प्रशंसा करते-करते दोनों ही भगवत्प्रेमके प्रसंगमें डूब गये।

राजा जगतसिंहजीने जयसिंहजीसे कहा—'मुझमें भगवत्प्रेम कहाँ है? सच्चा प्रेम तो आपकी बहन दीपकुँवरिजीमें है, उसके प्रेमकी गन्धको भी मैं नहीं पा सकता हूँ, वे तो वात्सल्य प्रेमरसकी खान हैं। मैं तो थोड़ी-बहुत भगवान्की सेवा कर पाता हूँ।' यह सुनकर जयसिंहजीको बड़ा सुख हुआ। कुछ समयसे किसी कारणवश ये अपनी बहन श्रीदीपकुँवरिसे नाराज रहते थे। अब श्रीजगतसिंहजीसे उनके प्रेमका परिचय पाकर जयसिंहजीने उस नाराजगीको अपने हृदयसे निकाल दिया। बहनके जो गाँव छीन लिये थे, वे फिरसे दे दिये और स्वयं हरिका ध्यान करने लगे। मन्त्रीको लिखित आदेश दिया कि 'बहनजी जैसे-जैसे सन्त-भगवन्तकी सेवा करना चाहें, वैसे-वैसे उन्हें करने देना। इनकी कृपासे अब मैं भी दिन-रात भक्त-भगवद्गुणोंका गान करता हूँ।'

श्रीप्रियादासजीने राजा जगतसिंहके इस भगवत्प्रेमका वर्णन अपने कवित्तोंमें इस प्रकार किया है—

जगता कौ पन मन सेवा श्री नारायण जू, भयौ ऐसौ पारायण, रहै डोला सङ्ग ही।
लरिबे कों चलै आगै, आगै सदा पीछे रहै, ल्यावै जल सीस, ईश भर्‌यौ हियो रङ्ग ही॥
सुनि जशवन्त जयसिंह कै हुलास भयौ, देख्यौ, दिल्ली माँझ, नीर ल्यावत अभङ्ग ही।
भूमि परि, बिनै करी, 'धरी देह तुमहीं नै', यातै पायौ नेह भीजि गये यों प्रसङ्ग ही॥ ६२१॥
नृपति जैसिंहजू सों बोल्यौ 'कहा नेह मेरे? तेरी जो बहिन ताकी गन्ध को न पाऊँ मैं'।
नाम 'दीपकुंवरि' सो बड़ी भक्तिमान जानि, वह रसखानि ऐपै कछुक लड़ाऊँ मैं॥
सुनि सुख भयौ भारी, हुती रिस वासों, टारी, लिये गाँव काढ़ि फेरि दिये, हरि ध्याऊँ मैं।
लिखिकै पठाई 'बाई करैं सो करन दीजै, लीजै साधु सेवा करि निस दिन गाऊँ मैं'॥ ६२२॥

राव जगतसिंहजीका नित्य भगवच्चरणामृत लेनेका नियम था। एक दिनकी बात है—जनानी ड्योढ़ीसे एक मेहतरानी हाँडीमें राबड़ी लिये आ रही थी। इन्होंने मेहतरानीको पहचाना नहीं, पूछा—बाई! तुम्हारी हाँडीमें क्या है? उस दिन कुछ पाहुने (अतिथि सन्त) आये हुए थे, उनमेंसे एकने दिल्लगीमें कह दिया—इसकी हाँडीमें चरणामृत है। इसपर रावजी चरणामृत देनेके लिये बड़े आदरके साथ मेहतरानीसे आग्रह करने लगे। उसने हाथ जोड़कर कहा—मैं भंगिन हूँ, हाँडीमें राबड़ी है, चरणामृत नहीं है। पर ये कहते ही रहे—बाई, इसमें चरणामृत है—तू मुझे पिलाती क्यों नहीं? आखिर रावजीने हाँडीका मुँह खुलवाया। देखा तो भगवान्‌का चरणोदक भरा है। उसपर पवित्र तुलसीदल तैर रहा है। तब तो उन पाहुनोंको बड़ी लज्जा हुई। उन्होंने अपना अपराध माना और वे क्षमा-प्रार्थना करने लगे।

राव जगतसिंहजी प्रसिद्ध मेड़तणी भक्तिमती मीराँबाईके भतीजे लगते थे और उन्हींके उपदेशसे इनमें भक्तिके दृढ़ संस्कार पड़े थे।

एक बार जब राव जगतसिंहजी जोधपुर अपनी हवेलीमें विराजते थे, लगातार सात दिनोंतक वर्षा होती रही। सूर्य भगवान्‌के दर्शन दुर्लभ हो गये। जोधपुरमें ऐसे बहुत-से नर-नारी थे, जो सूर्यके दर्शन करनेपर भोजन करते थे। घनघोर घटाओंमें जब सूर्यभगवान्‌के शीघ्र उदय होनेकी आशा नहीं रही, तब शहरके लोगोंने महाराजा जोधपुरसे प्रार्थना की कि आप भी हमारे सूर्य हैं। आप हाथीपर सवार होकर सबको दर्शन दे दें, ताकि सब लोग भोजन कर सकें। जोधपुरनरेश स्वयं व्रतके पक्के थे। उन्होंने कहा कि और लोग तो मेरे दर्शन करके भोजन कर लेंगे, परंतु मैं किसके दर्शन करके भोजन करूँगा? अन्तमें उन्होंने निश्चय किया कि मैं भक्तराज राव जगतसिंहजीके दर्शन करूँगा। जोधपुरनरेश हाथीपर सवार होकर नगरमें निकले। उधर जब राव साहबको पता लगा, तब उन्हें संकोच हुआ। वे उस समय भगवान् श्रीश्यामजीकी सेवामें थे। उन्होंने कातर प्रार्थना की और महाराज जोधपुरकी सवारी बाजारतक आते-आते बादलोंको चीरकर भगवान् भास्कर प्रकट हो गये। सबने सूर्य-दर्शन करके अपनेको कृतार्थ माना। जोधपुरनरेश भी दर्शन करके वापस लौट गये। राव जगतसिंहकी प्रार्थनाका यह फल देखकर सब लोग चकित रह गये। इन्होंने अपने यहाँ पशुवध सर्वथा बन्द करा दिया था, जो बन्दी अब तक चालू है। भगवान् श्रीश्यामजीके सामने कीर्तन करते हुए इन्होंने शरीर छोड़कर परमधाममें प्रयाण किया था।

श्रीगिरिधरग्वालजी

प्रेमी भक्त प्रसिद्ध गान अति गदगद बानी।
अंतर प्रभु सों प्रीति प्रगट रहै नाहिन छानी॥
नृत्य करत आमोद बिपिन तन बसन बिसारै।
हाटक पट हित दान रीझि तत्काल उतारै॥
मालपुरै मंगल करन रास रच्यो रस रंग को।
गिरिधरन ग्वाल गोपाल को सखा साँचिलो संग को॥ १९४॥

श्रीगिरिधरग्वालजी गोपालकृष्णके सच्चे सखा और साथी थे। ये प्रसिद्ध प्रेमी भक्त थे। प्रेमके आवेशमें आकर गद्‌गद कण्ठसे जब ये भगवद्‌गुणगान करते तो उस समय आपके हृदयकी प्रीति छिपाये नहीं छिपती थी, प्रकट हो जाती थी। प्रेम-विवश आनन्दमें मग्न होकर जब ये श्रीवृन्दावनमें नृत्य करते तो उस समय इन्हें अपने शरीरकी तथा वस्त्राभूषणोंकी सुध नहीं रहती। उस समय यदि कोई आपके सामने पड़ जाता तो आप रीझकर उसे सोनेके गहने अथवा जरीदार वस्त्र उतारकर दे देते। एक बार प्रेमी भक्तोंके मंगल

कल्याणके लिये आपने मालपुरा (जयपुरके निकट) नामक ग्राममें रास करवाया। उसमें रसरूपी रंगकी वर्षा हुई, जिसमें सभी रँग गये॥ १९४॥

श्रीगिरिधरग्वालजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीगिरिधरजी जातिसे ब्राह्मण थे। गोपालके भक्त थे, गोधन ही इनका मुख्य धन था। गोधनकी समृद्धिसे इनके घरमें ऋद्धि-सिद्धि और सम्पत्ति अटूट थी। गोचारणमें स्वाभाविक स्नेह था, अतः 'ग्वाल' इनकी उपाधि थी। गोचारणके लिये वनमें जाते, वहाँ कीर्तनमें श्रीगोपालकृष्णका सान्निध्य प्राप्त करके नृत्य करते। प्रेमीभक्त होनेके साथ-साथ आप नामी मल्ल भी थे। आप पूर्वजन्ममें द्वापरयुगमें कृष्ण-बलरामके सखा थे और उनके साथ गोचारण किया करते थे। साथ ही कृष्ण-बलरामसे कुश्ती भी लड़ते थे, अतः इस जन्ममें भी आपमें वह संस्कार और कौशल बना हुआ था। एक बार दिल्लीके बादशाहने आपको बुलाकर कहा—मैंने सुना है कि आप मल्ल-विद्यामें बड़े प्रवीण हो, अतः मेरे दिग्विजयी मल्लोंके साथ कुश्ती लड़कर अपनी कला दिखलाओ। आपने अस्वीकार किया। जैसे-जैसे आपने लड़नेसे इनकार किया, वैसे-वैसे बादशाह एवं अन्य लोगोंका आग्रह बढ़ा। अन्तमें आपने कहा कि आपका दरबारी पहलवान जो सबसे बड़ा हो, वह पहले मेरी गर्दनपर रगड़ा मारे। उसके बाद मैं उसकी गर्दनपर रगड़ा मारूँ। इसीमें बल और कलाका पता पड़ जायगा। दरबारी पहलवानने स्वीकार करके गर्दनपर रगड़ा मारा, तो आपकी नासिकासे रक्तकी कुछ बूँदें निकल आयीं। इसके बाद गिरिधरजीने उसकी गर्दनपर रगड़ा मारा, तो एक ही रगड़ेमें उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। लोगोंको शल-तोशलके वधकी याद आ गयी। सन्तुष्ट होकर सभीने आपकी जय-जयकार की। बादशाहने आपका बड़ा सम्मान किया और अपने दरबारमें रहनेकी प्रार्थना की, जिसे किसी भी मूल्यपर आपने स्वीकार नहीं किया।

श्रीगिरिधरग्वालजीको सर्वदा साधु-सेवाका ही स्मरण रहता था। सन्तोंका दर्शन करके आप कृतार्थ हो जाते थे, अपनेको धन्य मानते थे। सन्त-तत्त्वको आपने भलीभाँति समझ लिया था, अतः शरीर छूट जानेके बाद भी उस सन्तका चरणामृत लेते थे। इससे अधिक सन्तोंमें प्रेम करनेकी रीति और क्या हो सकती है! जो ब्राह्मण लोग इनकी दृढ़-निष्ठासे अपरिचित थे, उन्होंने मृतकका चरणामृत लेना अनुचित मानकर पंचोंको एकत्र किया और उसमें श्रीग्वालभक्तजीको भी बुलाया। सभी लोगोंने इनसे कहा कि 'मृतकका चरणोदक लेना ठीक नहीं है, आप इसे छोड़ दीजिये।' आपने उत्तर दिया कि 'जिसे सन्तोंमें अश्रद्धा हो, उनके महत्त्वको न जानता हो, वह उन्हें मृतक मानकर उनका चरणामृत न ले। मैं सन्तोंमें श्रद्धा करता हूँ, उनके अद्भुत प्रभावको भलीभाँति जानता हूँ। शरीर त्यागकर भगवद्धाम जानेवाले सन्तोंको मृतक नहीं मानता हूँ। अतः उनका चरणामृत लेता हूँ, जिसे मृतक-बुद्धि हो, आपलोग उसे मना कीजिये।' यह सुनकर सबोंने इनका जाति-पाँतिसे बहिष्कार कर दिया, फिर चमत्कारको देखकर सभी नतमस्तक हुए। सबको इनकी दृढ़निष्ठा अच्छी लगी। सभी लोग इनकी प्रशंसा करने लगे।

श्रीप्रियादासजीने श्रीगिरिधरग्वालजीकी इस सन्तनिष्ठाका वर्णन इस प्रकार किया है—

गिरिधर ग्वाल, साधु सेवा ही कौ ख्याल जाके, देखि यौं निहाल होत प्रीति साँची पाई है।
सन्त तन छूटे हूँते लेत चरणामृत जो, और अब रीति कहौ कापै जात गाई है॥
भये द्विज पञ्च इक ठौरे सो प्रपञ्च मान्यौ आन्यौ सभा माँझ कहैं 'छोड़ौ न सुहाई है।
जाके हो अभाव मत लेवौ, मैं प्रभाव जानौं मृतक यों बुद्धि ताकौ बारो' सुनि भाई है॥ ६२३॥

श्रीगोपालीजी (श्रीगोपालीबाईजी)

प्रगट अंग में प्रेम नेम सों मोहन सेवा।
कलिजुग कलुष न लग्यो, दास तें कबहुँ न छेवा॥

बानी सीतल सुखद सहज गोबिंद धुनि लागी।
लच्छन कला गँभीर धीर संतनि अनुरागी॥
अंतर सुद्ध सदा रहै रसिक भक्ति निज उर धरी।
गोपाली जन पोष कों जगत जसोदा अवतरी॥ १९५॥

भक्तोंका वात्सल्यभावसे पालन-पोषण करनेके लिये श्रीगोपालीबाईके रूपमें मानो श्रीयशोदाजीने ही अवतार लिया था। इनके अंग-प्रत्यंगमें प्रेम प्रकट था। ये नित्य-नियमसे अपने मोहनलालकी सेवा करती थीं। कलियुगके दोष-पाप आपके तन-मनको छूतक नहीं पाये थे और भक्तोंसे किसी प्रकारका छल-कपट आपने नहीं रखा। आपकी वाणी सहज ही शीतल एवं सुख देनेवाली थी। आप श्रीगोविन्दभगवान्‌के नामको सदा रटती रहती थी। भक्ता एवं पतिव्रता स्त्रियोंके सभी शुभ लक्षण एवं कलाएँ आपमें विद्यमान थीं। स्वभावसे धीर-गम्भीर एवं सन्तोंमें श्रद्धा-भक्ति रखनेवाली श्रीगोपालीबाईका अन्तःकरण सदा परम पवित्र रहता था। इन्होंने वात्सल्यरसमयी भक्ति अपने हृदयमें धारण की॥ १९५॥

श्रीगोपालीजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीगोपालीजी भगवान् श्रीकृष्णकी वात्सल्यभावसे भावित भक्त थीं। श्रीयशोदाजी ही भक्तिमती गोपालीके रूपमें गोलोकसे पृथ्वीपर आ गयी थीं। वही आवेश आपके अंगमें था। प्रेमसे मोहनलालकी सेवा करती थीं। एक बार इनकी भक्तिपर रीझकर प्रभु एक सन्तका वेश धारणकर इनके घरपर पधारे। उस समय गोपालीबाई श्रीठाकुरजीको भोग लगा रही थीं। सन्त भगवान्‌का सत्कार करके प्रसादसे भरी थाली लाकर बाईने सन्तके सामने रखकर प्रार्थना की—'प्रसाद पाइये।' सन्तने कहा—पहले भगवान्‌को पवाओ। बाईने कहा—भगवान् तो गन्धमात्र ग्रहण करते हैं, मैं उन्हें कैसे पवाऊँ? सन्तने कहा—यदि आप अपने हाथसे उनके श्रीमुखमें ग्रास दे दें तो वे अवश्य ही खायेंगे। बाईने मन्दिरमें थाल ले जाकर अपने हाथसे भगवान्‌के मुखमें ग्रास दिया। बड़े प्रेमसे भगवान्‌ने खा लिया। इससे बाईको बड़ा-भारी सुख हुआ, वे प्रेममें विभोर हो गयीं। जिस सन्तकी कृपासे यह अभूतपूर्व आनन्द मिला, उस सन्तको भोजन करानेकी उत्कण्ठासे मन्दिरके बाहर आयीं, पर सन्तके दर्शन न हुए। अब इन्हें बड़ी बेचैनी हुई। आप समझ गयीं, कि वे सन्त भगवान् ही थे। फिर आप मन्दिरमें श्रीठाकुरजीको पवाने लगीं। इस बार प्रभुने कुछ भी नहीं खाया। तब ये अधीर होकर रुदन करने लगीं। उसी समय आकाशवाणी हुई कि एक बार मैंने तुम्हारे प्रेमसे खा लिया। अब तुम आग्रह न करो। मैं रसका आस्वादन अपने भक्तोंकी रसनासे करता हूँ। तुम भक्तोंकी उनकी रुचिके अनुसार भोजन कराओ, उनकी सेवा करो।

इस आज्ञाके बाद बाईको भक्तोंकी इच्छाका अनुभव होने लगा। तदनुसार ये सेवा करने लगीं। एक दिन दस सन्त आये, उनके मनमें था आज सीरा मिले। बाईने जानकर सीरा बनाकर भोग लगाया और सन्तोंके सामने रख दिया। सन्तोंके मनमें आश्चर्य हुआ। दूसरे दिन सन्तोंने आपसमें बातचीत करके खीर भोग आरोगनेकी इच्छा की। तो बाईने खीर ही खवाई। तीसरे दिन सिखरन-भातकी इच्छा हुई, तो बाईने सिखरन-भात ही पवाया। आश्चर्यचकित होकर सन्तोंने पूछा—तो आपने बताया कि मुझे सन्त-भगवन्तका आशीर्वाद मिल गया है अतः उसका ज्ञान हो गया है। फिर कभी दो सन्त पधारे, उन्होंने इच्छा की कि हमारे वस्त्र फट गये हैं। तो गोपालीबाईके यहाँ पहुँचकर उनसे नये वस्त्र ले लेंगे। इस इच्छासे आये सन्तोंको भोजन कराकर बाईने वस्त्र अर्पण करके कहा कि जो इच्छा हो सो बनवा लो। सन्तोंने त्याग दिखाया और वस्त्र लेनेसे इनकार कर दिया, तब बाईने कहा—'जब आप वस्त्रकी इच्छा करके आये हैं, तब फिर अब क्यों अस्वीकार करते हैं? सन्तोंने गोपालीके चरणोंकी वन्दना की और आशीर्वादके साथ वस्त्र प्राप्त किये। इस

प्रकार इनका सुयश सन्तोंमें फैल गया।'

श्रीरामदासजी

सीतल परम सुसील बचन कोमल मुख निकसै।
भक्त उदित रबि देखि हृदय बारिज जिमि बिकसै॥
अति आनँद मन उमँगि सन्त परिचर्जा करई।
चरन धोय दंडौत बिबिधि भोजन बिस्तरई॥
बछबन निवास बिस्वास हरि जुगल चरन उर जगमगत।
श्री (रामदास) रस रीति सों भली भाँति सेवत भगत॥ १९६॥

श्रीरामदासजी बड़े मधुर भावसे भक्तोंकी सेवा करते थे। इनके मुखसे शीतल, कोमल और नम्रतापूर्ण वचन ही निकलते थे। सूर्योदय होते ही जैसे कमल विकसित हो जाते हैं, उसी प्रकार भक्तको देखकर आपका हृदय खिल उठता था। मनमें अपार उत्साह रखकर बड़ी रुचिके साथ सन्तोंकी विविध प्रकारसे सेवा-शुश्रूषा करते थे। आते ही सन्तोंके श्रीचरणोंको धोकर चरणोदक लेते, उन्हें साष्टांग दण्डवत् करते; तत्पश्चात् अनेक प्रकारके उत्तम-से-उत्तम भोजन-प्रसाद पवाते। बछवनमें आपका निवास-स्थान था, भगवान्‌में आपका अटल विश्वास था और उन्हींके युगल श्रीचरणकमल आपके हृदय-भवनमें जगमगाते रहते थे॥ १९६॥

श्रीरामदासजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

किसी सन्तने श्रीरामदासजीके भक्ति-भावकी प्रशंसा सुनी तो वे इनकी भक्तिनिष्ठाको देखनेके लिये इनके आश्रमपर आये। संयोगवश ये वहीं बैठे थे। वे सन्त इन्हींसे पूछने लगे कि 'श्रीरामदासजी कौन हैं?' सन्तको आया देखकर श्रीरामदासजी जल्दीसे उठे और उन्होंने सन्तके चरण धोकर चरणामृत लिया। इसके बाद साष्टांग दण्डवत् करके बोले—'आप विराजो, रामदास अभी आता है।' आगन्तुक सन्तने कहा—'पहले हमें यह बतलाइये कि रामदासजी कहाँ हैं, उनसे मिलनेकी मुझे तीव्र लालसा है और यहाँ आनेका हमारा यही मुख्य प्रयोजन है। उनसे मिलकर हमें शीघ्र ही चले जाना है।' श्रीरामदासजीने उत्तर दिया—'पहले आप चलकर प्रसाद लीजिये, फिर रामदास आ जायगा।' सन्तने कहा—'नहीं, पहले रामदासजीको बुलाकर उनका दर्शन करा दीजिये। उसके बाद ही मैं प्रसाद पाऊँगा।' इस प्रकार उनका आग्रह देखकर श्रीरामदासजीने कहा—'आप सन्तोंका सेवक रामदास यही है, यह आपका ही आश्रम है, कृपा करके आप अपने आश्रममें पधारिये और प्रसाद पाइये।' यह सुनते ही वे सन्त श्रीरामदासजीके चरणोंमें गिर पड़े। उनका हृदय आनन्दसे भर गया, वे फूले नहीं समा रहे थे। वे कहने लगे—'आपके सुयशकी चाँदनी सर्वत्र फैली है, उससे सभी लोगोंको सुख-शान्ति मिल रही है। आपका दर्शन करके मैं कृतार्थ हो गया। मेरे हृदयमें भी प्रकाश हो गया।'

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

सुनि एक साधु आयौ, भक्ति भाव देखिबे कों, बैठे रामदास, पूछै रामदास कौन है?'।
उठे आप धोए पाँव, आवै रामदास अब, 'रामदास कहाँ? मेरे चाह और गौन है'॥
'चलो जू प्रसाद लीजै दीजै रामदास आनि', 'यही रामदास, पग धारौ निज भौन है'।
लपटानौ पाँयन सो चायन समात नाहिं, भायनि सों भर्‌यौ हिये, छाई जस जौन्ह है॥ ६२४॥

श्रीरामदासजीकी कन्याका विवाह था। उस अवसरपर सबको बड़ा भारी उत्साह हुआ। अनेक प्रकारके पक्वान्न बाराती और घरातियोंके लिये बनाकर कोठेमें रख दिये गये। इनके पुत्र और नाती पक्वान्नोंकी रखवाली

करने लगे। उन्होंने कोठेमें ताला बन्द कर दिया; क्योंकि उनके मनमें डर था कि कहीं बाबाजी सब सामान साधु-सन्तोंको बाँट न दें। अवसर पाकर श्रीरामदासजीने दूसरी ताली लगाकर कोठेका ताला खोल लिया। आप किसीसे डरते न थे। सन्तजन पधारे, आपने पोटली बँधवा दी और कहा कि स्थानमें ले जाकर आपलोग भोग लगाइये और पाइये। सन्त-भगवन्तको पक्वान्नोंकी पोटलियाँ बँधवाकर आपने महान् सुख प्राप्त किया।

श्रीप्रियादासजीने इस घटनाका अपने एक कवित्तमें इस प्रकार वर्णन किया है—

बेटी को विवाह, घर बड़ौ उतसाह भयो, किये पकवान नाना, कोठे माँझ धरे हैं।
करैं रखवारी सुत नाती दिये तारौ रहैं, और ही लगाई तारी खोल्यौ नहीं डरे हैं॥
आये गृह सन्त तिन्हें पोट बँधवाय दई, पायौ यों अनन्त सुख ऐसे भाव भरे हैं।
सेवा श्रीबिहारीलाल, गाई पाक सुद्धताई, मेरे मन भाई, सब साधु उर हरे हैं॥ ६२५॥

श्रीरामरायजी

भक्ति ग्यान बैराग जोग अंतर गति पाग्यो।
काम क्रोध मद लोभ मोह मतसर सब त्याग्यो॥
कथा कीरतन मगन सदा आनँद रस भूल्यो।
संत निरखि मन मुदित उदित रबि पंकज फूल्यो॥
बैर भाव जिन द्रोह किय तासु पाग खसि भ्वै परी।
बिप्र सारसुत घर जनम रामराय हरि रति करी॥ १९७॥

सारस्वत ब्राह्मणवंशमें जन्म लेकर श्रीरामरायजीने भगवान्‌में प्रेम किया। आपकी चित्तवृत्ति ज्ञान, वैराग्य और भक्तियोगमें सर्वदा पगी रहती थी। काम, क्रोध, अहंकार, लोभ, मोह और ईर्ष्या आदि मायिक विकारोंको आपने सर्वथा छोड़ दिया था। आप सर्वदा भगवत्कथा-कीर्तनमें मग्न होकर इसके आनन्दमय अनुभवसे झूमते रहते थे। सन्तोंको देखकर आपका मन उसी प्रकार खिल जाता था, जैसे सूर्यको देखकर कमलका पुष्प। जिन दुष्टोंने आपसे द्वेष किया, आपको नीचा दिखाना चाहा, उन्हें स्वयं ही नीचा देखना पड़ा॥ १९७॥

श्रीरामरायजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीरामरायप्रभुका जन्म रावी नदीके तटपर बसे लाहौर (पंजाब)-में वि० सं० १५४० वैसाख शुक्ल ११ को मध्याह्नमें हुआ। आपके पिता श्रीगुरुगोपालजी और माता श्रीयशोमतिजी थीं। परम्परागत रूपसे घरमें विराजमान श्रीगीतगोविन्दके कर्ता श्रीजयदेवजीके ठाकुर श्रीराधामाधवजीने श्रीगुरुगोपालजीको स्वप्नादेश दिया कि मेरा चरणामृत अपनी धर्मपत्नीको पिलाओ, उससे एक महान् चमत्कारी भक्तपुत्र उत्पन्न होगा। पादोदक-पान करते ही यशोमतिजीको ऐसा अनुभव हुआ कि किसी शक्तिविशेषने मेरे उदरमें प्रवेशकर मुझे कृतार्थ किया। किसीके मतसे श्रीरामेश्वरम्‌की यात्रामें वहीं जन्म हुआ, इसलिये इनके रामेश्वर, रामराय, रामदास और रामगोपाल आदि नाम पड़ गये। ग्यारह वर्षकी अवस्थामें यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ। पिताने इन्हें गायत्रीके साथ श्रीराधागोपाल मन्त्र दिया। जो यमुनापुलिन धीरसमीर वृन्दावनमें श्रीजीके द्वारा श्रीजयदेवजीको प्राप्त हुआ था। श्रीरामरायके प्राकट्यके १० वर्ष बाद श्रीचन्द्रगोपालजीका जन्म हुआ। सब लोग इन्हें चित्रासखीका अवतार मानते थे। श्रीरामरायजीने वि० सं० १५५२ बसन्त पंचमीके दिन श्रीजयदेवजीकी जन्म-जयन्तीके उपलक्ष्यमें बिना सामग्री मँगवाये एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराया, इससे आपकी महिमा सर्वत्र विख्यात हो गयी। ठाकुर श्रीराधामाधवजीने आज्ञा दी कि तुम वृन्दावन जाओ, उसके बाद मैं चन्द्रगोपालके साथ आऊँगा। आदेश पाकर योगबलसे आप हरिद्वार पहुँच गये। वहाँ नानाके बड़े भ्राता श्रीआसुधीरजी मिले।

उन्हें भी वृन्दावन ले आये। मार्गमें उपब्रज (अलीगढ़)-में प्रसादी नामके ब्राह्मण सन्तसेवा करते थे। उनके यहाँ विश्राम किया। उनकी दीनता देखकर आपने अपनी मुद्रिका उतारकर दे दिया और आशीर्वाद दिया कि खूब लक्ष्मीसे सम्पन्न हो जाओ और श्रीराधामाधवका भजन करो। कालान्तरमें श्रीसे सम्पन्न होनेपर श्रीराधामाधवकी सेवापूजा करने लगे। श्रीआसुधीरजीको सम्पूर्ण ब्रजयात्रा करवायी। ब्रजवासियोंकी एवं ब्राह्मणोंकी खूब सेवा करते, इससे इन्हें सब लोग 'प्रभु' कहने लगे।

एक दिन श्रीरामरायजीने वृन्दावनमें वास करनेकी इच्छा प्रगट की। लोगोंने समझाया कि यहाँ हिंसक जानवर रहते हैं। लेकिन एक दिन सभीको सोते हुए छोड़कर आप वृन्दावन पहुँच गये। यमुनापुलिन धीर समीरमें आपको श्रीराधामाधवजीके दिव्य दर्शन हुए। श्रीठाकुरजीने आदेश दिया कि पहले तीर्थाटन करो, तब यहाँ वास करना। तीर्थाटन करते हुए आप काशी पहुँचे। विद्वानोंने प्रभावित होकर आपकी शोभायात्रा निकाली। उसमें श्रीमाधवेन्द्रपुरी, राजेश्वरतीर्थ, प्रकाशानन्द सरस्वती, श्रीबल्लभाचार्य, श्रीगोकुलानन्द, विद्या-सागर, गोविन्द, कवि रंगनाथ एवं विश्वनाथ आदि महापुरुष उपस्थित थे। ईर्ष्यावश जिन्होंने शास्त्रार्थ किया, उन्हें पराजित करके भक्तिकी स्थापना की। हजारों लोगोंको प्रसाद पवाकर सन्तुष्ट किया। श्रीनित्यानन्द महाप्रभुने प्रसन्न होकर इन्हें अपनी ओर आकर्षित किया। श्रीमाधवेन्द्रपुरीजीने श्रीरामरायजीको बताया कि ये संकर्षणभगवान् हैं, इनसे दीक्षा ले लो। गुरुत्वको स्वीकार करो। आचार्य होकर भी इन्होंने उनके गुरुत्वको स्वीकार किया। आपके उत्कृष्ट दैन्यको देखकर श्रीबल्लभाचार्यजी भी बहुत सन्तुष्ट हुए। इसके पश्चात् श्रीरामरायजी श्रीनित्यानन्दजीके साथ नवद्वीप पधारे और श्रीचैतन्य महाप्रभुजीका दर्शन किया। उन्हें अष्टपदी सुनाया। प्रसन्न होकर श्रीचैतन्यमहाप्रभुजीने कहा—'आप साक्षात् रामभद्र हैं।' मैं श्रीवृन्दावनमें आकर आपसे मिलूँगा। अपने साथ भूगर्भ और लोकनाथको ले जाओ। आप श्रीजगन्नाथभगवान्का दर्शन करते हुए वृन्दावन आये। श्रीमाधवेन्द्रपुरीजीने गोवर्धनमें आकर वि० सं० १५६० में श्रीनाथजीको प्रकट किया। श्रीनाथजीकी आज्ञा पाकर श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी चन्दन-कपूर लेनेके लिये उड़ीसा चले तो श्रीरामरायजीको श्रीनाथजीकी सेवा सौंप गये। आप अनेक उत्सव करने लगे। कुछ दिनों बाद श्रीरामरायजी दो बंगाली वैष्णवोंके द्वारा श्रीनाथजीकी सेवा कराने लगे। इसके बाद आप जगन्नाथपुरी चले गये। बंगाली वैष्णव स्वतन्त्र रूपसे सेवा करने लगे। जगन्नाथपुरीमें लाहौरके भक्तोंसे भेंट हुई तो उन्हें वृन्दावन आदिका दर्शन कराकर लाहौर विदा कर दिया। इधर पुत्रके वियोगमें श्रीगुरुगोपाल और यशोमतिजीने शरीर त्यागकर परमधामगमन किया। यह जानकर आपने चन्द्रगोपालको स्वप्नादेश दिया। वे श्रीराधामाधवको लेकर पत्नीसहित वृन्दावन आ गये और वंशीवट स्थानमें ठहरे। आप श्रीराधामाधवजीके दर्शन करके विभोर हो गये। इन्हें छातीसे लगाकर श्रीठाकुरजीने आज्ञा दी कि श्रीवृन्दावनरसकी वर्षा करो, तुम्हारी वाणी 'आदिवाणी' कहलायेगी।

श्रीगौरांग महाप्रभु वृन्दावन पधारे और अक्रूरघाटपर ठहरे। श्रीरामरायजी नित्य गीतगोविन्द सुनाकर उन्हें प्रसन्न करते। महाप्रभुजीने गोपालजीके दर्शनोंकी इच्छा की, लेकिन श्रीगिरिराजजीके ऊपर पैर नहीं रखना चाहते थे। उसी समय अकस्मात् यवन आतंकवश वैष्णव लोग श्रीनाथजीको गाठौली ले आये। तब श्रीमहाप्रभुजीने दर्शन किया। इस प्रकार व्रजमें महाप्रभुजीका संगसुख आपको प्राप्त हुआ। श्रीगोपालजीके प्राकट्यका समाचार पाकर श्रीमद्बल्लभाचार्य महाप्रभु यहाँ पधारे। आपसे पूर्व परिचय था, अतः आपके पास ठहरे। आपने सभी व्रजवासियोंकी सम्मतिसे श्रीनाथजीकी सेवा श्रीबल्लभाचार्यजीको सौंप दी। इन्होंने मन्दिर बनवाया और सेवा तथा भोगरागकी विशेष व्यवस्था की। आपने बंगाली वैष्णवोंको सेवासे नहीं हटाया। उस विवादमें आपने बल्लभकुलका ही पक्ष लिया, अतः बंगाली वैष्णव आपसे असन्तुष्ट हुए। बारह वैष्णव वार्तामें लिखा है कि इसी कारणसे श्रीरामरायजीकी चर्चा गौड़ीय साहित्यमें बहुत कम हुई। श्रीजीवगोस्वामीजीने प्रपंचसे दूर होनेके कारण श्रीरामरायजीकी 'सन्दर्भ' के मंगलाचरणमें आपकी वन्दना

की है। यथा—'**वन्दे श्रीपरमानन्दं भट्टाचार्यं सुखालयम्। रामरायं तथा वाणीविलासं चोपदेशकम्॥**'

एक बार श्रीरामरायजी गोकुल दर्शन करने गये तो श्रीगोकुलनाथजीका दर्शन करके फिर श्रीविट्ठलनाथजीसे मिले। उन्होंने आपकी बहुत प्रशंसा की। प्रशंसा सुनकर आप बोले—अरबी घोड़ा यदि तुर्की चाल चलता है तो उसकी लोग विशेष बड़ाई नहीं करते हैं, परंतु यदि खच्चर तुर्की चाल चले तो सभी देखने जाते हैं और बड़ाई करते हैं। ऐसे ही हंसकी हंसता यदि कौवेमें हो तो उसे बड़प्पन मिलता है। यह सुनकर गोसाईंजी बहुत प्रसन्न हुए। अन्तिम समयमें कहीं आना-जाना बन्द करके आप बन-विहार और वंशीवटमें रहकर भजन-ध्यान करते रहे। उसी समय आपने ब्रह्मसूत्रपर गौरविनोदिनीवृत्ति लिखी। इनके छोटे भ्राता श्रीचन्द्रगोपालजीने वृत्तिके ऊपर भाष्य किया। श्रीरामरायजीके संस्कृतमें द्वादश ग्रन्थ हैं। आदिवाणी और श्रीगीतगोविन्दपर पदावली ये भाषाग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार वि० सं० १५४० तक आपकी दिव्य जीवनलीला रही। आपके १२ प्रधान शिष्य थे। इनके नाम इस प्रकार हैं—(१) श्रीभगवानदासजी, (२) श्रीगरीबदासजी, (३) श्रीविष्णुदासजी, (४) श्रीयुगलदासजी, (५) गोस्वामी श्रीराधिकानाथजी, (६) श्रीकिशोरदासजी, (७) श्रीकेशवदासजी, (८) श्रीमनोहरदासजी, (९) श्रीलाखादासजी, (१०) श्रीमधुसूदनदासजी, (११) श्रीहरिदासजी पटेल, (१२) श्रीतीर्थरामजी जोशी।

श्रीभगवन्तमुदितजी

कुंजबिहारी केलि सदा अभ्यंतर भासै।
दंपति सहज सनेह प्रीति परमिति परकासै॥
अननि भजन रस रीति पुष्ट मारग करि देखी।
बिधि निषेध बल त्यागि पागि रति हृदय बिसेषी॥
माधव सुत संमत रसिक तिलक दाम धरि सेव लिय।
भगवंत मुदित ऊदार जस रस रसना आस्वाद किय॥ १९८॥

श्रीमाधवदासजीके सुपुत्र श्रीभगवन्तमुदितजीने रसिक भक्तोंसे समर्थित तुलसीकण्ठी और तिलक धारणकर अपने इष्टदेव श्रीराधाकृष्णकी नित्य-नियमसे सेवा की तथा उदार भगवान्‌के परमोदार सुयशका अपनी वाणीसे वर्णन करके उसके रसका आस्वादन किया। श्रीकुंजविहारिणी-कुंजविहारीकी नित्य-निकुंजलीला इनके हृदयमें सर्वदा प्रकाशित रहती थी। दम्पति श्रीराधाकृष्णका जो पारस्परिक सहज स्नेह और प्रीतिकी जो अन्तिम सीमा है, उससे आपका हृदय प्रकाशित था। अनन्य भावसे सेवा करनेकी जो रसमयी रीति है, उसीको आपने उत्तम-से-उत्तम मार्ग मानकर अपनाया, उसीपर चले। भक्तिसे भिन्न लौकिक-वैदिक विधि-निषेधोंका सहारा छोड़कर आपका हृदय विशेषकर श्रीराधाकृष्णके परमानुरागमें सराबोर रहता था॥ १९८॥

श्रीभगवन्तमुदितजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीभगवन्तमुदितजी परमरसिक सन्त थे। आप आगराके सूबेदार नवाब शुजाउल्मुल्कके दीवान थे। कोई भी ब्राह्मण, गोसाईं, साधु या गृहस्थ ब्रजवासी जब आपके यहाँ पहुँच जाता तो आप अन्न, धन और वस्त्र आदि देकर उसे प्रसन्न करते थे; क्योंकि व्रजवासियोंके प्रेममें इनकी बुद्धि रम गयी थी। आपके गुरुदेवका नाम श्रीहरिदासजी था। ये श्रीवृन्दावनके ठाकुर श्रीगोविन्ददेवजी मन्दिरके अधिकारी थे। इन्होंने व्रजवासियोंके मुखसे श्रीभगवन्तमुदितजीकी बड़ी प्रशंसा सुनी तो इनके मनमें आया कि हम भी आगरा जाकर (शिष्य) भक्तकी भक्ति देखें।

श्रीभगवन्तमुदितजीने सुना कि श्रीगुरुदेव आ रहे हैं तो इन्हें इतनी प्रसन्नता हुई कि ये अपने अंगोंमें फूले नहीं समाये। ये अपनी स्त्रीसे बोले कि 'कहो, श्रीगुरु-चरणोंमें क्या भेंट देनी चाहिये?' स्त्रीने कहा—'हम दोनों एक-एक धोती पहन लें और शेष सब घर-द्वार, कोठार-भण्डार, चल-अचल सम्पत्ति श्रीगुरुदेवको समर्पण कर दें और हम दोनों वृन्दावनमें चलकर भजन करें। स्त्रीकी ऐसी बात सुनकर श्रीभगवन्तमुदितजी उसपर बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'सच्ची गुरु-भक्ति करना तो तुम ही जानती हो, यह तुम्हारी सम्मति हमको अत्यन्त प्रिय लगी है।' ऐसे कहते हुए उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। गुरुदेव रात्रिमें बाहर द्वारपर बैठे सुन रहे थे। सर्वस्व-समर्पणकी बात गोस्वामी श्रीहरिदासजीने सुन ली और उन्होंने जान लिया कि ये सर्वस्व-त्याग करके विरक्त बनना चाहते हैं, जिसका अभी योग नहीं है, अत: आप उसी समय बिना श्रीभगवन्तमुदितजीसे मिले ही परिचित व्यक्तिको बताकर लौटकर श्रीवृन्दावनको चले आये और इनके प्रेम-भरे त्यागके प्रणपर बहुत ही सन्तुष्ट हुए।

भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने अपने कवित्तोंमें इस घटनाका वर्णन इस प्रकार किया है—

सूजा के दीवान भगवन्त रसवन्त भए, वृन्दावन बासिन की सेवा ऐसी करी है।
बिप्र कै गुसाईं साधु कोऊ ब्रजवासी जाहु, देत बहु धन एक प्रीति मति हरी है॥
सुनी गुरुदेव, अधिकारी श्रीगोविन्द देव, नाम हरिदास 'जाय देखैं' चित धरी है।
जोग्यताई सीवां प्रभु दूध भात माँगि लियो कियौ उत्साह तऊ पेखैं अरबरी है॥ ६२६॥
सुनी गुरु आवत, अमावत न किहूँ अंग रंग भरि तिया सों, यों कही 'कहा कीजियै?'।
बोली घर बार पट सम्पति भण्डार सब भेंट करि दीजै, एक धोती धारि लीजियै॥
रीझे सुनि बानी, साँची भक्ति तैं ही जानी, मेरे अति मन मानी, कहि आँखें जल भीजियै।
यही बात परी कान, श्रीगुसाईं लई जान, आये फिरि वृन्दावन, पन मति धीजियै॥ ६२७॥

श्रीभगवन्तमुदितजीको जब यह मालूम हुआ कि श्रीगुरुदेव आये और वापस चले गये तो आपका उत्साह नष्ट हो गया। हृदयमें अपार पश्चात्ताप हुआ। फिर आपने गुरुदेवके दर्शन करनेका विचार किया और नवाबसे आज्ञा माँगकर श्रीवृन्दावन आये। गुरुदेवके दर्शनकर सुखी हुए। बहुतसे लीला-पदोंकी रचना की। आपका 'रसिकअनन्य-भक्तमाल' ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इस प्रकार आपने अनन्य-प्रेमका एकरस निर्वाह किया। गुरुदेवसे आज्ञा लेकर आगराको लौट गये। वहाँ किसी कारणवश कई व्रजवासी चोरोंने आपके घरमें ही चोरी कर ली, पर इससे आपने जरा भी मनमें दु:ख न माना; क्योंकि आपका मन भगवान्‌की भक्तिमें सराबोर था और दृष्टिमें श्रीवृन्दावन-बिहारिणी-बिहारीजी समाये हुए थे। वास्तवमें आप बड़े ही भाग्यशाली और प्रेमी सन्त थे। संसारमें आपका भगवत्प्रेम प्रसिद्ध था। श्रीभगवन्तमुदितजीके पिता श्रीमाधवदासजी रसिक थे। आगे उनकी कथा सुनिये—

'श्रीमाधवदासजी बेसुध हैं, नाड़ी छूटनेवाली है, अब इनका अन्तिम समय आ गया है'— ऐसा जानकर लोग उन्हें पालकीमें बैठाकर आगरासे श्रीवृन्दावनधामको ले चले। जब आधी दूर आ गये, तब श्रीमाधवदासजीको होश हो आया। दु:खित होकर आपने लोगोंसे पूछा कि क्रूरो! तुम लोग मुझे कहाँ लिये जा रहे हो?' लोगोंने कहा—'आप जिस श्रीवृन्दावनधामका नित्य ध्यान किया करते हैं, वहीं ले चल रहे हैं।' यह सुनकर आपने कहा—'अभी लौटाओ, यह शरीर श्रीवृन्दावन जानेके योग्य कदापि नहीं है, इसे जब वहाँ जलाया जायगा, तब इसमेंसे बड़ी-भारी दुर्गन्ध निकलेगी, वह प्रिया-प्रियतमको अच्छी नहीं लगेगी।' प्रिया-प्रियतमके पास जानेयोग्य जो होगा, वह अपने-आप उनके पास चला जायगा। आप ऐसे भावकी राशि थे। वापस जाकर आगरामें ही आपने शरीर छोड़ा।

श्रीप्रियादासजीने श्रीमाधवदासजीकी इस भावनाका अपने कवित्तोंमें इस प्रकार वर्णन किया है—

रह्यौ उत्साह उर दाह कौ न पारावार कियौ लै विचार, आज्ञा माँगि, बन आये हैं।
रहे सुख लहे, नाना पद रचि कहे, एक रस निर्बहे ब्रजवासी जा छुटाये हैं॥
कीनी घर चोरी, तऊ नेकु नासा मोरी नाहिं, बोरी मति रंग, लाल प्यारी दृग छाये हैं।
बड़े बड़भागी, अनुरागी, रति जागी, जग माधव रसिक बात सुनौ पिता पाये हैं॥ ६२८॥
आयौ अन्तकाल जानि बेसुध पिछानि, सब आगरे तें लैकै चले वृन्दावन जाइयै।
आये आधी दूर, सुधि आई बोले चूर ह्वै कै 'कहाँ लिये जात कूर?' कही जोई ध्याइयै॥
कह्यौ 'फेरो तन बन जाइबे कौ पात्र नाहीं, जरै बास आवै प्रिया पिय को न भाइयै'।
जानहारौ होई, सोई जायगो जुगल पास, ऐसे भावरासि ताही ठौर चलि आइयै॥ ६२९॥

श्रीलालमतीजी

गौर स्याम सों प्रीति प्रीति जमुना कुंजनि सों।
बंसीबट सों प्रीति प्रीति ब्रज रज पुंजनि सों॥
गोकुल गुरुजन प्रीति प्रीति घन बारह वन सों।
पुर मथुरा सों प्रीति प्रीति गिरि गोबर्द्धन सों॥
बास अटल बृन्दाबिपिन दृढ़ करि सो नागरि कियो।
दुर्लभ मानुष देह को लालमती लाहो लियो॥ १९९॥

परमभक्ता श्रीलालमतीजीने गौर-श्याम श्रीराधाकृष्ण, श्रीयमुनाजी तथा उसके तटपर विराजमान कुंज-भवनोंसे प्रेम किया। इनके हृदयमें वंशीवट, व्रजरज, गोकुल, व्रजवासी रसिक सन्त, श्रीमथुरापुरी एवं श्रीगिरिराज गोवर्धनके प्रति अपार प्रीति थी। इस चतुर व्रजभक्ता देवीने श्रीवृन्दावनधाममें अखण्डवास किया। इस प्रकार इन्होंने दुर्लभ मानवदेहका अलभ्य लाभ (हरिभक्ति) प्राप्त किया॥ १९९॥

श्रीलालमतीजीके विषयमें विशेष विवरण इस प्रकार है—

श्रीलालमतीजीकी व्रज-वृन्दावनमें बड़ी निष्ठा थी। उन्होंने यमुनाकुंज आदि अष्ट स्थानोंमें प्रेम किया, वे इनकी यात्रा करती रहती थीं। शरीरके क्षीण होनेपर भी दर्शन-यात्रा, सेवा आदिमें शिथिलता नहीं आयी। दर्शनोंकी तीव्र उत्कण्ठा देखकर प्रभुने इन्हें स्वप्नमें दर्शन दिया और कहा कि प्रातःकाल श्रीयमुनाकुंजमें आओ, वहाँ तुम्हें प्रत्यक्ष दर्शन होंगे। तुम्हारा शरीर शिथिल हो गया है, अतः यात्रा बन्द करके श्रीवृन्दावनमें ही वास करो। स्वप्नका स्मरणकर आपके मनमें बड़ा मोद हुआ। प्रातः आपने अपनी दासीके साथ यमुना-स्नान किया और कुंजमें आकर बैठ गयीं। वहींपर श्रीराधाकृष्णने इन्हें दर्शन दिया। प्रेममें विह्वल प्रभुकी शोभाका गान करके ये दासीको सुनाने लगीं। दासी भी सुनने लगी, पर दासीको भगवान्‌की छायाके भी दर्शन नहीं हो रहे थे। श्रीलालमतीजीने प्रार्थना की—प्रभो! दासीपर भी किंचित् कृपा हो। भगवान्‌ने प्रार्थना स्वीकार करके मुरली बजायी? जिसकी ध्वनि दासीको सुनायी पड़ी और वह भी कृतार्थ हुई। इसके बाद लीलाधारी प्रभु यमुनामें कूद पड़े। कुछ दूरतक बाईको दर्शन होते रहे। इसके बाद प्रभु अन्तर्धान हो गये। श्रीलालमतीजी दासीसहित कुंजमें बेसुध पड़ी रहीं। पश्चात् श्यामसुन्दरकी उसी शोभाका ध्यान करती रहीं। इस प्रकार श्रीधाममें वास प्राप्तकर लालमतीजीने जीवन-जन्म सफल किया।* बालकरामजी लिखते हैं—

* भक्तमालमें वर्णित भगवद्भक्तोंका पावन चरित यहाँ पूर्ण हो जाता है। आगेके छन्दोंमें भक्तोंकी महिमा आदिका वर्णन हुआ है।

'केती दूरि देखे बाई आपनी कमाई पाई प्रेम की सगाई जामें और न खटाइये॥'

भक्त ही सर्वश्रेष्ठ

कबिजन करत बिचार बड़ो कोउ ताहि भनिज्जै।
कोउ कह अवनी बड़ी जगत आधार फनिज्जै॥
सो धारी सिर सेस सेस सिव भूषन कीनो।
सिव आसन कैलास भुजा भरि रावन लीनो॥
रावन जीत्यो बालि (पुनि) बालि राम इक सर दँड़े।
अगर कहै त्रैलोक में हरि उर धारैं ते बड़े॥ २००॥

परम विवेकी ऋषिगण एकत्र होकर विचार करने लगे कि सबसे बड़ा कौन है, जिसका भजन-कीर्तन किया जाय? किन्हीं लोगोंने कहा कि पृथ्वी सबसे बड़ी है; क्योंकि यह सारे विश्वको धारण की हुई है। (दूसरेने कहा कि) उस पृथ्वीको शेषभगवान्ने अपने फणोंपर रजकणके समान धारण कर रखा है, अतः शेष उससे बड़े हैं। (तीसरेने कहा कि) शेषको श्रीशंकरजीने अपने उरपर आभूषणकी तरह धारण कर रखा है, अतः शंकरजी बड़े हैं। (चौथेने कहा कि) शिवका निवास-स्थान कैलासपर्वत है, उसके समेत रावणने शिवको अपनी भुजाओंपर उठा लिया। उस रावणको बालिने जीत लिया। ऐसे पराक्रमी बालिका वध करनेवाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सबसे बड़े हैं। (यह सुनकर पाँचवें श्रीपंचने कहा कि) ऐसे महतो महीयान् भगवान्को जो भक्त अपने हृदयमें धारण करते हैं, वे तीनों लोकोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। श्रीअग्रदेवजीका मत है कि सबसे बड़े जो भक्तजन हैं, उन्हींकी सेवा करो॥ २००॥

भक्तोंके सुयशकी महिमा

नेह परसपर अघट निबहि चारौं जुग आयो।
अनुचर को उतकर्ष स्याम अपने मुख गायो॥
ओत प्रोत अनुराग प्रीति सबही जग जानैं।
पुर प्रबेस रघुबीर भृत्य कीरति जु बखानैं॥
अगर अनुग गुन बरनते सीतापति नित होयँ बस।
हरि सुजस प्रीति हरि दास के त्यों भावैं हरि दास जस॥ २०१॥

जिस प्रकार भगवद्भक्तोंको भगवान्के सुयशमें प्रीति होती है, उसी प्रकार भगवान्को भी अपने प्रेमी भक्तोंकी कथा बहुत ही अच्छी लगती है। भक्तोंके और भगवान्के पारस्परिक प्रेमका चारों युगोंमें निर्वाह हुआ है—यह सर्वदा पूर्ण और एक-सा रहता है। अपने भक्तोंकी महिमाको भगवान्ने बार-बार अपने श्रीमुखसे गाया है। भगवान् भक्तोंके अनुरागमें सदा ही सराबोर रहते हैं। इसको सारा संसार जानता है। वनवासकी अवधि पूरी होनेपर श्रीअयोध्यापुरीमें प्रवेश करते समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने अनुचरोंकी कीर्तिका वर्णन किया है। श्रीअग्रदेवाचार्यजी कहते हैं कि उक्त प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि भक्तोंके गुणोंका वर्णन करनेसे श्रीसीतापति श्रीरामचन्द्रजी सदाके लिये वशमें हो जाते हैं॥ २०१॥

सन्तोंका उत्कर्ष

दुर्बासा प्रति स्याम दासबसता हरि भाषी।
ध्रुव गज पुनि प्रह्लाद राम सबरी फल साषी॥
राजसूय जदुनाथ चरन धोय जूँठ उठाई।
पांडव बिपति निवारि दिए बिष बिषया पाई॥
कलि बिसेष परचो प्रगट आस्तिक ह्वै कै चित धरौ।
उतकर्ष सुनत संतनि को अचरज कोऊ जिनि करौ॥ २०२॥

इस भक्तमालमें या अन्यत्र इतिहास-पुराणोंमें सन्तोंकी बहुत बड़ी बड़ाईका वर्णन सुनकर कोई आश्चर्य (अविश्वास) न करे; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने (श्रीभागवतमें) दुर्वासा ऋषिसे कहा है कि 'मैं भक्तोंके वशमें हूँ।' श्रीध्रुवजी, गजेन्द्र, श्रीप्रह्लादजी आदिके चरित्र एवं श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा शबरीके फलोंका सादर खाया जाना आदि प्रसंग सन्तोंकी बड़ाईके साक्षी हैं। श्रीयुधिष्ठिरजीके राजसूय-यज्ञमें श्रीकृष्णने साधु-ब्राह्मणोंके चरण धोये और उनकी जूठी पत्तलें उठायीं। पाण्डवोंपर आयी अनेक बड़ी-बड़ी विपत्तियोंसे उनकी रक्षा की। भक्त चन्द्रहासजीको दुष्टने विष दिया, पर उसके बदले उन्हें विषया नामक स्त्री और राज्यकी प्राप्ति हुई। ये तो पिछले तीन युगोंकी बातें हुईं। इस कलियुगमें तो विशेष सन्तोंके चमत्कार प्रकट हुए। अतः कुतर्क त्यागकर विश्वासपूर्वक आस्तिक-बुद्धिसे भक्तचरित्रोंको हृदयमें धारण करो, तभी रहस्य समझमें आयेगा॥ २०२॥

श्रीनाभादासजीकी भक्तोंसे विनय-प्रार्थना

पादप पेड़हिं सींचते पावै अँग अँग पोष।
पूरबजा ज्यों बरनते सब मानियो सँतोष॥ २०३॥
भक्त जिते भूलोक में कथे कौन पै जायँ।
समुँद पान श्रद्धा करै कहँ चिरि पेट समायँ॥ २०४॥
श्रीमूरति सब बैष्नव लघु बड़ गुननि अगाध।
आगे पीछे बरनते जिनि मानौ अपराध॥ २०५॥
फल की सोभा लाभ तरु तरु सोभा फल होय।
गुरू सिष्य की कीर्ति में अचरज नाहीं कोय॥ २०६॥
चारि जुगन में भगत जे तिन के पद की धूरि।
सर्बसु सिर धरि राखिहौं मेरी जीवन मूरि॥ २०७॥

जैसे पेड़की जड़को सींचनेसे उस पेड़के अंग-प्रत्यंग, शाखा, पत्र-पुष्प आदि सभी पुष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार पूर्वाचार्यों (सम्प्रदायाचार्यों)-के वर्णनसे सभी भक्तोंका वर्णन हो गया, ऐसा मानकर जिनका चरित्र इस भक्तमालमें नहीं आया है, उनका भी स्मरणकर सन्तोष करना चाहिये॥ २०३॥ इस जगत्में जितने भगवान्के भक्त हैं, उन सबके चरित्रोंका वर्णन कौन कर सकता है? जैसे कोई छोटी चिड़िया समुद्रके सम्पूर्ण

जलको पी लेनेकी श्रद्धापूर्वक इच्छा करे तो वह उसके पेटमें कैसे समा सकता है?॥ २०४॥ भगवद्विग्रह या तुलसीदल चाहे छोटा हो अथवा बड़ा, सबकी एक-जैसी महान् महिमा है, उसी प्रकार वैष्णवजन चाहे छोटे हों या बड़े, सभी अनन्त गुणोंके कारण महा महिमावाले हैं। इस भक्तमालमें किसीका वर्णन आगे-पीछे, बड़े-छोटेकी दृष्टिसे नहीं किया गया है। इसलिये यदि कहीं आगे वर्णनीयका पीछे वर्णन दिखायी पड़े तो पाठकजन इसमें दासका अपराध न मानें॥ २०५॥ जिस प्रकार वृक्षमें लगे रहनेसे फलोंकी शोभा होती है और फलमें स्थित बीजसे वृक्ष-उत्पत्ति-रूप लाभ होता है तथा फलोंसे वृक्षकी शोभा और वृक्षसे फलोंका लाभ मिलता है, उसी प्रकार गुरुजनोंकी महिमा और कीर्तिसे शिष्योंकी महिमा और कीर्ति बढ़ती है तथा शिष्योंकी कीर्तिसे गुरुजनोंकी। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है॥ २०६॥ चारों युगोंमें जितने भक्त हुए हैं तथा जो आगे होंगे, उनके श्रीचरणकमलोंकी धूलि सर्वदा हमारे मस्तकपर रहे, वही हमारी जीवनमूरि है और वही सर्वस्व है॥ २०७॥

भक्तोंकी महिमा

जग कीरति मंगल उदै तीनौं ताप नसायँ।
हरिजन को गुन बरनते हरि हृदि अटल बसायँ॥ २०८॥
हरिजन को गुन बरनते (जो) करै असूया आय।
इहाँ उदर बाढ़ै बिथा औ परलोक नसाय॥ २०९॥
(जो) हरि प्रापति की आस है तौ हरिजन गुन गाव।
नतरु सुकृत भुंजे बीज ज्यौं जनम जनम पछिताव॥ २१०॥
भक्तदास संग्रह करै कथन श्रवन अनुमोद।
सो प्रभु प्यारौ पुत्र ज्यों बैठै हरि की गोद॥ २११॥
अच्युत कुल जस बेर इक जाकी मति अनुरागि।
उन की भक्ती सुकृत को निहँचै होय बिभागि॥ २१२॥
भक्त दास जिन जिन कथी तिन की जूँठनि पाय।
मो मति सार अच्छर द्वै कीनौं सिलौ बनाय॥ २१३॥
काहू के बल जोग जग्य, कुल करनी की आस।
भक्त नाम माला अगर (उर) बसौ नारायनदास॥ २१४॥

भगवद्भक्तोंके गुण और चरित्रोंका वर्णन करनेसे इस संसारमें कीर्ति और सभी प्रकारके कल्याणोंकी प्राप्ति होती है, त्रितापका नाश होता है तथा हृदयमें अटलरूपसे भगवान्‌का वास हो जाता है॥ २०८॥ हरिभक्तोंके गुण-वर्णनको सुनकर जो लोग उनके गुणोंमें दोषारोपण करते हैं, उन्हें इस जन्ममें अनेक उदर रोगोंसे कष्ट भोगना पड़ता है और मरनेके बाद उनका परलोक भी नष्ट हो जाता है॥ २०९॥ यदि भगवान्‌की प्राप्त करनेकी आशा है तो भक्तोंके गुणोंको गाइये, निस्सन्देह भगवत्प्राप्ति हो जायगी। नहीं तो जन्म-जन्मान्तरोंमें किये गये अनेक पुण्य भुने हुए बीजकी तरह बेकार हो जायँगे। उनसे कल्याण न होगा फिर जन्म-जन्ममें पछताना पड़ेगा॥ २१०॥ जो कोई भक्त-चरित्रोंका संग्रह करे अथवा कथन-श्रवण एवं समर्थन

करे, वह भगवान्‌को पुत्रके समान प्रिय है, उसे भगवान् अपनी गोदमें बैठा लेते हैं॥ २११॥ अच्युतगोत्रीय भगवद्भक्तोंकी कीर्तिको कहने-सुननेमें जिसके मनमें एक बार अनुराग हो गया, वह मनुष्य निश्चय ही उन सन्तोंके भजन और पुण्यमें हिस्सेदार हो जाता है। (जैसे पिताकी सम्पत्तिमें पुत्रका सहज अधिकार होता है)॥ २१२॥ जिन-जिन सन्त, विद्वान् महान् महानुभावोंने भक्तोंके चरित्रोंका वर्णन किया है, उन्हींकी जूठन लेकर मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार इस 'भक्तमाल' की रचना उसी प्रकार की है, जैसे कोई सिला (खेतके अन्न-कण) बीनकर संग्रह करे॥ २१३॥ किसीको बल, योग और यज्ञ आदिका भरोसा है, इनसे कल्याण होगा यह विश्वास है। किसीको अपने उत्तम कुल और पवित्र कर्मोंकी आशा है कि इन्हींसे भवसागर पार हो जायँगे। पर इन योग, यज्ञादिका अनुष्ठान मेरे वशका नहीं है, इसलिये हमें इनकी आशा नहीं है। मुझ नारायणदासकी तो यही इच्छा है कि गुरुदेव, भगवद्भक्तोंके नाम और उनके चरित्र मेरे हृदयमें निवास करें॥ २१४॥

॥ श्रीनाभादासविरचित भक्तमाल सम्पूर्ण हुआ॥

श्रीप्रियादासजीद्वारा गुरु-वन्दना

रसिकाई कबिताई जाहि दीनी तिनि पाई भई सरसाई हिये नव नव चाय हैं।
उर रङ्गभवन में राधिका रवन बसैं लसैं ज्यौं मुकुर मध्य प्रतिबिम्ब भाय हैं॥
रसिक समाज में विराज रसराज कहैं चहैं मुख सब फूलैं सुख समुदाय हैं।
जन मन हरि लाल मनोहर नाँव पायो उनहूँ को मन हरि लीनौ याते राय हैं॥ ६३०॥

भक्तिरसबोधिनी टीकाकार श्रीप्रियादासजी भक्तमालके उपसंहारमें अपने गुरुदेवजी श्रीमनोहरदासजीका परिचय देते हुए कहते हैं कि मेरे गुरुदेवने जिन-जिन लोगोंको रसिकता और कवित्व प्रदान किया, उन्हें-उन्हें उसकी प्राप्ति हुई और उनके हृदयमें सरसता तथा नवीन प्रेमका चाव उत्पन्न हुआ। मेरे गुरुदेवके हृदयरूपी रंगमहलमें श्रीराधारमणजी उसी प्रकार निवास करते हैं, जैसे कि दर्पणमें प्रतिबिम्ब स्वाभाविक रूपसे रहता है। मेरे गुरुदेवजी रसिकोंकी सभामें विराजमान होकर जिस समय उज्ज्वल श्रृंगाररसकी कथा कहते हैं, उस समय सभी भावुक श्रोता उनके श्रीमुखकी ओर टकटकी लगाकर देखते ही रह जाते हैं और आनन्दमें मग्न होकर फूले नहीं समाते हैं। अपने भक्तोंके मनको हरण करके भगवान् श्रीकृष्णने 'मनोहर' यह नाम पाया, परंतु मेरे श्रीगुरुदेवने मनोहरके मनको भी हर लिया है, इसीलिये वे 'मनोहरराय' हैं॥ ६३०॥

इनहीं के दास दास दास प्रियादास जानौ तिन लै बखानौ मानौ टीका सुखदाई है।
गोवर्धननाथ जू कें हाथ मन पर्‌यौ जाको कर्‌यौ बास वृन्दावन लीला मिलि गाई है॥
मति उनमान कह्यौ लह्यौ मुख सन्तनि के अन्त कौन पावै जोई गावै हिय आई है।
घट बढ़ जानि अपराध मेरौ क्षमा कीजै साधु गुणग्राही यह मानि मैं सुनाई है॥ ६३१॥

इन्हीं श्रीमनोहरदासजीके दासोंका दास यह प्रियादास है, ऐसा जानिये। उसने श्रीभक्तमालकी इस सुखदायिनी भक्तिरसबोधिनी टीकाका वर्णन किया है। श्रीगोवर्धननाथजीके हाथोंमें जिनका मन पड़ गया है, उसने श्रीवृन्दावनमें निवास करके और सन्तोंसे मिलकर इस लीलाका गान किया है। सन्तोंके श्रीमुखसे जैसा कुछ सुना, उसे ही अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन किया। इन लीलाओंका अन्त कौन पा सकता है। सम्पूर्ण लीलाओंका वर्णन करना असम्भव है। जिसकी बुद्धिमें जितनी लीलाएँ आयीं, उसने उतनी गायी हैं, इन लीलाओंको गानेमें मुझसे जो कुछ घटी-बढ़ी हो गयी हो, इस अपराधको आपलोग क्षमा कीजिये। साधुजन गुणग्राही होते हैं, त्रुटियोंकी ओर ध्यान नहीं देते हैं, ऐसा मानकर ही मैंने अपनी तुच्छ-बुद्धिके अनुसार इन लीलाओंको गाकर सुनाया है॥ ६३१॥

श्रीप्रियादासजीद्वारा श्रीनाभादासजीकी वन्दना

कीनी भक्तमाल सुरमाल नाभा स्वामी जू ने तरे जीव जाल जग जन मन पोहनी।
भक्ति रस बोधिनी सो टीका मति सोधिनी है बाँचत कहत अर्थ लगै अति सोहनी॥
जो पै प्रेम लक्षना की चाह अवगाहि याहि मिटै उर दाह नेकु नैननि हूँ जोहनी।
टीका अरु मूल नाम भूल जात सुनै जब रसिक अनन्य मुख होत विश्वमोहनी॥ ६३२॥

गोस्वामी श्रीनाभाजीने सुन्दर मधुर-रससे व्याप्त श्रीभक्तमालकी रचना की। यह सभी भक्तोंके मनको गूँथनेवाली है। इसका पठन-श्रवण करके अनेक जीव भवसागरसे तर गये। उसी भक्तमालकी यह भक्तिरसबोधिनी नामकी टीका है। इसके पठन-श्रवणसे मायासे मोहित बुद्धि भी शुद्ध हो जाती है। पढ़नेमें, कहनेमें और अर्थ करनेमें यह बहुत ही अच्छी लगती है। यदि किसीको प्रेम-लक्षणा भक्तिको प्राप्त करनेकी इच्छा है तो वह इस टीकाका निरन्तर पठन, श्रवण और मनन करे। जो इसे मनके नेत्रोंसे भलीभाँति देखेगा, उसके हृदयका दाह दूर हो जायगा। इसकी एक विशेषता यह भी है कि इसे प्रेमसे सुनते समय यह भूल जाता है कि हम मूलका श्रवण कर रहे हैं या कि टीकाका। अनन्यरसिक भगवद्भक्तके श्रीमुखसे जब इसका कथन होता है, तब यह सारे जगत्को मोहित करनेवाली हो जाती है॥ ६३२॥

नाभा जू कौ अभिलाष पूरन लै कियौ मैं तौ ताकी साखी प्रथम सुनाई नीके गाइकै।
भक्ति विशवास जाके ताही कों प्रकाश कीजै भीजै रंग हियो लीजै सन्तनि लड़ाइकै॥
सम्वत् प्रसिद्ध दस सात सत उन्हत्तर, फालगुन मास बदी सप्तमी बिताइकै।
नारायणदास सुख रास भक्तमाल लै कै, प्रियादास दास उर बसौ रहौ छाइकै॥ ६३३॥

मैंने श्रीनाभाजीकी अभिलाषाको ही पूर्ण किया है। उसकी साक्षी मैंने पहले ही भलीभाँति गाकर सुना दी है। जिसके हृदयमें भक्त-भगवच्चरणारविन्दोंमें भक्ति और विश्वास हो, उसीके सामने इस भक्तमालकी कथाको कहना चाहिये, जिसे सुनकर उसका हृदय भक्तमालके रंगमें डूब जाय और वह श्रद्धासमेत सन्तोंकी सेवा करने लग जाय। प्रसिद्ध विक्रम सम्वत् १७६९ फाल्गुन कृष्ण सप्तमीको यह 'भक्तिरसबोधिनी' टीका पूर्ण हुई। मेरी प्रार्थना है कि सुखप्रद श्रीनारायणदासजी (श्रीनाभास्वामी) सुखस्वरूप श्रीभक्तमाल-ग्रन्थके समेत दासानुदास मुझ प्रियादासके हृदयमें सर्वदा निवास करें॥ ६३३॥

श्रीप्रियादासजीद्वारा भगवान्से निवेदन

अगिनि जरावौ लैके जल में बुड़ावौ भावै सूली पै चढ़ावौ घोरि गरल पिवायबी।
बीछू कटवावौ कोटि साँप लपटावौ हाथी आगे डरवावौ ईति भीति उपजायबी॥
सिंह पै खवावौ चाहौ भूमि गड़वावौ तीखी अनी बिधवावौ मोहिं दुख नहीं पायबी।
ब्रजजन प्रान कान्ह बात यह कान करौ भक्त सों बिमुख ताको मुख न दिखायबी॥ ६३४॥

व्रजजनोंके प्राणस्वरूप हे श्रीकृष्णभगवान्! आप चाहे मुझे अग्निमें डालकर जलाइये, चाहे जलमें डुबाइये, आपकी इच्छा हो तो शूलीपर चढ़ा दीजिये, घोलकर विष पिला दीजिये, बिच्छुओंसे कटवाइये, मेरे शरीरमें करोड़ों साँप लिपटवाइये, मतवाले हाथीके आगे डलवा दीजिये, ईति (पीड़ा), भीति आदि मेरे कष्टके लिये प्रकट कर दीजिये, सिंहके द्वारा मरवाइये, चाहे धरतीमें गड़वाइये, तीक्ष्ण भाला आदिसे छिदवाइये—इन सबसे मुझे नाममात्रका भी दुःख नहीं होगा, परंतु हे कान्ह! ध्यानपूर्वक मेरी यह बात सुन लीजिये कि जो भक्तविमुख हैं, उनका मुख कभी न दिखाइये, उससे मुझे बहुत भयंकर कष्ट होगा॥ ६३४॥

॥ श्रीप्रियादासकृत भक्तिरसबोधिनी टीका पूर्ण हुई॥

श्रीनाभादासकृत श्रीभक्तमालकी नामानुक्रमणिका*

[अ] अंग (१०), अंगद (२०, ११३), अंगिरा (१६), अंगिरास्मृति (१८), अंशुकम्बल (२७), अक्रूर (९, १४, १५), अक्षयराज (११७), अगस्त्य (१६), अग्निपुराण (१७), अग्रदास (३९, ४१), अच्युत (१०१), अजामिल (७), अत्रि (१६), अत्रिस्मृति (१८), अधार (९६), अनन्त (२७), अनन्तानन्द (३६, १४६), अनुभवी (१०५), अन्तरिक्ष (१०, १३), अन्तर्निष्ठ राजा (५७), अपया (१०१), अभयराम (११७), अभिनन्द (२१), अमूर्त (१२), अम्बरीष (९, १५), अर्जुन (१४, १५, २२), अर्जुन गम्भीरे (१०५), अर्यमा (२५), अलर्क (११), अलिभगवान् (९४), अल्ह (३७, ५४, १३९), अशोक (१९), अष्टसखी (२२), आकूति (१०), आर्य राघव (९९), आविर्होत्र (१०, १३), आशकरण (१५८), आशकरन (१०२), आसकरन (१७४), आसाधर (९६)

[इ] इक्ष्वाकु (१२), इलापत्र (२७), इलावर्तखण्ड (२५), ईश्वर (१०५, ११७), ईश्वरदास (१३९)

[उ] उत्तंक (१२), उत्तानपाद (१२), उद्धव (९, १५, ९८, ९९, १४७), उद्धवघमण्डदेव (९४), उपनन्द (२१, २२), उबीठा (१०४), उमाभटियानी (१०४), उल्कामुख (२०)

[ऊ] ऊदाराम (९६), ऊदारावत (१०५), ऊधौ (१६९)

[ऋ] ऋचीक (१६), ऋभु (१२)

[क] कंचनधरटापू (२४), कटहरिया (९६), कन्हर (११७, १४६), कन्हरदास (१९१), कपिलदेव (७, १५), कपूर (९९), कबीरदास (३६, ६०), कमला (१०४), कमलाकरभट्ट (८६), कमलादेवी (२५), करभाजन (१०, १३), करमसील (११७), करमानन्द (१३९), करमैती (१६०), कर्कोटक (२७), कर्दम (१६), कर्मचन्द्र (३७), कर्मानन्द (२१), कर्माबाई (५०), कला (१०४), कल्याण (१७६), कल्याणदास (३९, १८९), कल्याणन (१७८), कवि (१०, १३), कश्यप (१६), कात्यायनस्मृति (१८), कात्यायनी (१२७), कान्हर (१००, १५२), कान्हरदास (३९, १७१), कामदेव (२५), कामध्वज (५२), काशीश्वर (९६), किम्पुरुषखण्ड (२५), किशोरसिंह (१२१), किशोरीदास (१५०), कीकी (१०४), कीता (९७), कीर्ति (२२), कील्हदास (३९, ४०), कुँवरि (१०४), कुँवरिराय (१७०), कुन्ती (९), कुमुद (८, २०), कुमुदाक्ष (८), कुम्भनदास (९८), कुरुखण्ड (२५), कुलशेखर (४९), कुशद्वीप (२४), कूरेशाचार्य (३१), कूर्म (२५), कूर्मपुराण (१७), कृतगढौ (१०४), कृष्णकिंकर (९६), कृष्णचैतन्य (७२), कृष्णजीवन (१४६), कृष्णदास (८१, १४७, १८०), कृष्णदास चालक (१२४), कृष्णदास पयहारी (३८, १८५), कृष्णदासपण्डित (९४), कृष्णदासब्रह्मचारी (९४), केतुमालखण्ड (२५), केवलदास (३९, १४९), केवलराम (१७३), केशव (१००, १०१), केशव दण्डौती (१०३), केशवदास (१५१), केशवभट्ट (७५), केशवलटेरा (१७२), केशवाचार्य (१०२), केशी (१७०), कैलास (२००), कोली (१०४), कोल्ह (१३९), क्रतुस्मृति (१८), क्रौञ्चद्वीप (२४), क्वाहब (१७८), क्षेम गुसाईं (८३)

[ख] खड्गसेन कायस्थ (१६१), खाटीक (१०२), खीचनि (१७०), खेता (१०१), खेम (१००, १४७, १५०, १५१), खेम वैरागी (९८), खेमदास (१५८), खेमालरत्न राठौर (११८), खोजी (९७)

[ग] गंगग्वाल (१६२), गंगल (८२), गंगा (१७०), गंगा (१०४), गंगाबाई (३९), गंगाभक्त (१४७), गंगाराम (१०२), गजेन्द्र (२०२), गजेन्द्र-ग्राह (९), गणेश (९९), गणेशदेई रानी (१०४), गदा (१०५), गदाधर (१४६), गदाधरदास (३९, १८६), गदाधरभट्ट (१३८), गन्धमादन (२०), गयेश (३७), गरुड (९), गरुडपुराण (१७), गर्ग (१६), गवय (२०), गवाक्ष (२०), गाधि (१२), गिरिधर (१३१), गिरिधरग्वाल (१९४), गुंजामाली (१०३), गुणनिधि (१०१), गुरुनिष्ठ शिष्य (५८), गुह-निषाद (१२), गोंदुदास (१५८), गोकुलनाथ (१३२), गोपानन्द (१४७), गोपाल (१००, १०६, १४९, १५७, १७८), गोपालदास (३९), गोपालभट्ट (९४), गोपाली (१०४, १९५), गोपीनाथ (१०३), गोपीनाथपण्डा (१०१), गोमती (१७०), गोमानन्द (१४९), गोविन्द (१०३, १०५, १४६), गोविन्ददास (१९२), गोविन्दब्रह्मचारी (१०१), गोविन्दस्वामी (१०२), गोसू (१४६), गौतम (१६), गौतमस्मृति (१८), गौरी (१०४), ग्वाल (१७८), ग्वालभक्त (५२)

* कोष्ठकमें दी गयी संख्या छप्पयकी संख्या है। यथा—अंग (१०)-का तात्पर्य है, अंगका वर्णन भक्तमाल ग्रन्थके छप्पयसंख्या १० के अन्तर्गत देखना चाहिये।

[घ] घमण्डी (९४), घाटम (९९), घूरी (९९)

[च] चक्रपाणि (९८), चण्ड (८, १३९), चतुर (९७), चतुरदास (१५८), चतुरोनगन (१४७, १४८), चतुर्भुज (१०३, ११४), चतुर्भुज कीर्तननिष्ठ (१२३), चन्द्रहास (९, २३, २०२), चमस (१०, १३), चरणदास (३९), चरित्र (१०३), चाँदन (३९), चाँदा (९७), चाचागुरु (९७), चित उत्तम (१०३), चित्रकेतु (९), चित्सुखानन्द (१८१), चीधर (१४९), चेता (१७८), चौमुख (१३९), चौरा (१३९), च्यवन (१६)

[छ] छीतम (१००), छीतर (९९), छीतर (१५८), छीतस्वामी (१४६)

[ज] जंगी (१५०), जगतसिंह (१९३), जगदानन्द (१८१), जगदीशदास (१०६), जगन (९९), जगन्नाथ (१५०), जगन्नाथ थानेश्वरी (९४), जगन्नाथ पारीख (१४३), जटायु (९), जड़भरत (११), जतीराम (९७), जनक (७), जनगोपाल (१११), जनदयाल (१०२), जनभगवान (१४६), जनार्दन (१०५), जमदग्नि (१६), जम्बुद्वीप (२४), जय (८), जयदेव (४४, १४७), जयन्त (१९, १०५), जयमल (५२, १०५, ११७), जसगोपाल (१०१), जसवन्त (१५५), जसूस्वामी (५४), जाड़ा (९७), जापू (१०५), जाबालि (१६), जाम्बवान् (९, २०), जीता (१०५), जीवगोस्वामी (९३, ९४), जीवा (६९), जीवानन्द (१३९), जीवानन्द (१३९), जेवा (१०४), जेवाबाई (१७०), जोइसिनि (१७०), जोगीदास (१५१), ज्ञानदेव (४८)

[झ] झाँझू (९९), झाली (१०४)

[ट] टीला (३९), टेकराम (३९)

[ड] डूँगर (९६)

[त] तक्षक (२७), तत्वा (६९), तमोली (१००), ताम्रध्वज (११), तिलोक सुनार (९८), तुलसीदास (१०५, १२१, १६९), तूँवर भगवान (१५४), त्यौला (१५१), त्रिपुरदास (३९), त्रिलोचन (४८, ९६), त्रिविक्रम (९९)

[द] दक्ष (१२), दक्षस्मृति (१८), दधिमुख (२०), दधीचि (११), दमाबाई (१७०), दयाल (१४७), दरीमुख (२०), दल्हा (९७), दाऊ (१०६), दामोदर (१००, १०५, १४७, १५८), दामोदरतीर्थ (१८१), दालभ्य (१६), दास (१०६), दासूस्वामी (१०३), दिलीप (१२), दिवाकर (७८, १५०), दीनदास (१४६), दुर्वासा (१६, २०२), दूदा (१३९), देवकल्याण (१६९), देवकी (१०४), देवल (१२), देवहूति (१०), देवा (१०४), देवापण्डा (३९, ५२), देवाचार्य (३५), देवादास (१५८), देवानन्द (१००), द्यौगू (९७), द्यौराजनीर (९६), द्रुमिल (१०, १३), द्रौपदी (९), द्वारकादास (१००, १८२), द्विविद (२०)

[ध] धनाबाई (१७०), धन्ना (३६, ६२), धरानन्द (२१, २२), धर्मपालक (१९), धर्मानन्द (२१), धारा (१०५), धृष्टि (१९), ध्यानदास (१५१), ध्रुव (९, १५, २०२), ध्रुवनन्द (२१, २२)

[न] नन्द (८, २१, २२, १००), नन्ददास (५४, ११०), नफर (९८), नर-नारायण (२५), नरवाहन (१०५), नरसिंहदास (१५०), नरसी (१०८), नरहरि (३७, १००), नरहर्यानन्द (३६, ६७, १००), नल (२०), नहुष (१२), नागू (१००), नागूपुत्र (१००), नाथभट्ट (१५९), नाथमुनि (३०), नापा (९७), नामदेव (४३, ४८), नारद (७, १५, २५, १४६), नारदपुराण (१७), नारायण (२६, १७८), नारायणदास (१६९, १८७), नारायणदास नर्तक (१४५), नारायणभट्ट (८७), नारायणमिश्र (१३४), नित्यानन्द (७२), निम्बार्काचार्य (२८), नींवा (११७), नीराँ (१७०), नील (२०), नीवा (१५३), नृसिंह (२५), नृसिंहारण्य (१८१)

[प] पण्डा (१४९), पत्रक (२३), पत्री (२३), पदारथ (९६), पद्म (२७, ९६, ९७, १६९), पद्मनाथ (३९, ३८), पद्मपुराण (१७), पद्मावती (३६), पनस (२०), पयद (२३), पयहारी (३७), परमानन्द (१४७, १६९), परमानन्द कालुख (१४९), परमानन्ददास (७४, १५१), परशुराम (१०२, १४७, १७२), परशुरामदेवाचार्य (१३७), परांकुशाचार्य (३०), पराशर (१६), पराशरस्मृति (१८), परीक्षित् (१०, १४), पर्वत (१६), पाण्डव (९), पादपद्म (३४), पार्वतीबाई (१७०), पिप्पलाद (१२), पिप्पलायन (१०, १३), पीपा (३६, ६१), पुखरदी (९८), पुण्डरीकाक्ष (३०), पुरुरवा (१२), पुरुषोत्तम (९७), पुरुषोत्तमदास (३९), पुलस्त्य (१६), पुलह (१६), पुष्करद्वीप (२४), पूरनदास (१५०), पूरु (१२), पूर्ण (१०२, १८३), पृथु (१०, १४), पृथुदास (३९), पृथ्वी (२५), पृथ्वी (२००), पृथ्वीराज (११६, १४०), प्रचण्ड (८), प्रचेता (१०), प्रबल (८), प्रबुद्ध (१०, १३) प्रबोधानन्द (१८१), प्रभुता (१०४), प्रयागदास (१००, १५०, १६६), प्रसूति (१०), प्रह्लाद (७, १४, १५,

२५, २०२), प्राचीनबर्हि (११), प्रियदयाल (१०२), प्रियव्रत (१०), प्रेमकन्द (२३), प्रेमनिधि (१६७), प्लक्षद्वीप (२४)

[ब] बकुल (२३), बच्छपाल (१४६), बड़भरत (१०१), बनवारीदास (१३३, १५०), बल (८), बलि (७, १४, १५), बल्लभ (२१), बहोरन (१०२), बाँदररानी (१७०), बाजू (१००), बाजूपुत्र (१००), बाल (१००), बालकृष्ण (१०१), बालमीक (९९), बालि (२००), बावन (१३६), बाहुबल (९९), बिको (९९), बिको (९९), बिज्जुली (९८), बिल्वमंगल (४६), बीठल (१०३, १४९), बीठलदास (१७७), बीठलाचार्य (९९), बीदा (१००), बीदावत (१०५), बीराराम (१६९), बुद्धिप्रकाश (२३), बृहस्पतिस्मृति (१८), बेणी (१०३), बोपदेव (३०), बोहित (१४६), बोहिथ (१६९), ब्रह्मदास (१०२, १४७), ब्रह्मपुराण (१७), ब्रह्मवैवर्तपुराण (१७), ब्रह्मा (७), ब्रह्माण्डपुराण (१७), ब्राह्मणदम्पत्ति (५५)

[भ] भक्तभाई (१०२), भगवन्तमुदित (१९८), भगवान (१००, १०६, ११७, १४९), भगवानदास (१५०, १५८, १८८), भगीरथ (११), भद्र (८), भद्रश्रवा (२५), भद्राश्वखण्ड (२५), भरत (११), भरत विरही (९८), भरतखण्ड (२५), भरद्वाज (१२), भविष्यपुराण (१७), भाऊ (१०६), भागवतपुराण (१७), भावन (९८), भावानन्द (३६), भीम (९९, १०१), भीष्म (७, १५, १०२), भुवनसिंह चौहान (५२), भूगर्भगोस्वामी (९४), भूरिश्रवा (१२), भृगु (१६), भोज (२२)

[म] मकरन्द (२३), मत्स्य (२५), मत्स्यपुराण (१७), मथुरादास (१४४), मदालसा (१०), मधुकण्ठ (२३), मधुकर (११७), मधुगोस्वामी (९४), मधुमंगल (२२), मधुवर्त (२३), मधुसूदनसरस्वती (१८१), मध्वाचार्य (२८, २९), मनु (७, १२, २५), मनुस्मृति (१८), मनोरथ (९७), मयन्द (२०), मयानन्द (१०५), मरहठ (१०३), महदा (९९), महीपति (१००), माँडिल (१४६), मांडन (१००), माण्डन (१३९), माण्डव्य (१६), माधव (१००, १३९), माधवग्वाल (१६५), माधवदास (७०, ११२, १९०), माधवानन्द (१८१), मानदास (१३०), मानमती (१०४), मान्धाता (१२), मामा-भानजे (५१), मायादर्श-मार्कण्डेय (१६), मार्कण्डेयपुराण (१७), मिथिलेश (११), मीराबाई (११५), मुकुन्द (९९), मुकुन्द (१००, १०१, १०३), मुचुकुन्द (१०), मुरलीश्रोत्रिय (१०३), मुरारिदास (१२८), मृगा (१०४), मैत्रेय (९), मोरध्वज (११), मोहन (१४७), मोहनबारी (१०६)

[य] यज्ञपत्नी (१०), यदु (१२), यदुनन्दन (१०३), यमराज (७), यमस्मृति (१८), यमुना (१०४, १७०), ययाति (१२), यशवन्त (१४६), यशोदा (२२), यशोधर (१०९), याज्ञवल्क्य (१२), याज्ञवल्क्यस्मृति (१८), यामुनाचार्य (३०), युधिष्ठिर (२०२), योगानन्द (३७)

[र] रंग (१००), रंगाराम (३९), रक्तक (२३), रघु (१२, ९९), रघुनाथ (१०३, १४७), रघुनाथदास (७१), रतिवन्तीबाई (४९), रत्नावती (१४२), रन्तिदेव (१२), रमणकखण्ड (२५), रय (१२), रसदान (२३), रसाल (२३), रसिकमुरारि (९५), रहूगण (११), राँका-बाँका (९७), राघव (१४७), राघवदास (१३५), राघवदास दूबलो (१६८), राघवानन्द (३५), राधा (२२), रामगोपाल (१४६), रामचन्द्र (२५, ११७), रामदास (५३, ९६, १०६, १४६, १९६), रामभद्र (१०३, १८१), रामरयन (११९), रामरयन-पत्नी (१२०), रामराय (१९७), रामरेणु (१४७), रामलाल (१०२), रामा (१०४), रामानन्द (१०३), रामानन्दाचार्य (२८, २९, ३५, ३६), रामानुजाचार्य (२८, २९, ३०, ३१), रामाबाई (१७०), रायमल (१५८), रावण (२००), रावल्य (९७), राष्ट्रवर्धन (१९), रुक्मांगद (११), रुक्मांगद-पुत्री (११), रुद्रप्रताप गजपति (१०१), रूपगोस्वामी (८९), रूपदास (१५८), रूपा (१००, १०५), रैदास (३६, ५९)

[ल] लक्ष्मण (९८, १०६), लक्ष्मणभट्ट (१८४), लक्ष्मी (९, १४, ३०), लक्ष्मीबाई (१७०), लखा (१०४), लघु उद्धव (१५०), लड्डू (९८), लफरा (९८), लमध्यान (९९), लाखा (९९, १०७, १७८), लाखै (१५८), लालदास (१६४), लालमती (१९९), लाला (९९), लालाचार्य (३३), लाली (१७०), लिंगपुराण (१७), लीलानुकरण (४९), लोकनाथ (९४), लोकालोक पर्वत (२४), लोमश (१६), लोहंग (१००)

[व] वर (१४६), वर्धमान (८२), वल्लभाचार्य (४८), वसिष्ठ (१६), वसिष्ठस्मृति (१८), वामनपुराण (१७), वारमुखी (५४), वाराह (२५), वाराहपुराण (१७), वाल्मीकि (११), वाल्मीकि-श्वपच (११), वासुकि (२७), वाहनवरीस (१०५), विजय (८, १९), विट्ठलदास (८४), विट्ठलनाथ (७९), विट्ठलविपुल (९४), विट्ठलेशसुत (८०), विदुर (९, १४७), विद्यापति (१०२), विनोदी (१५०), विन्ध्यावली (११), विभीषण (९, १५), विमलानन्द (९६), विमानी (९८), विशाखा (९९), विशाल (२३), विश्वामित्र (१६), विष्णु (१००), विष्णुदास (३९, १०३, १५७), विष्णुपुराण (१७), विष्णुपुरी (४७), विष्णुस्मृति (१८), विष्णुस्वामी (२८, २९), विष्वक्सेन (८, १५, ३०), विहारीकवि (१०२), विहारीदास

(१४६), वीरम (११७), वीराबाई (७०), वृद्धव्यास (९९), वृषभानु (२२), वेषनिष्ठ राजा (५६), व्यासशिष्यगण (१६), व्रजगोपियाँ (१०), व्रजवल्लभभट्ट (८८)

[श] शंकर (७, १५, २५, १७८, २००), शंकराचार्य (४२), शंकु (२७), शठकोप (३०), शतधन्वा (१२), शतरूपा (१०), शनैश्चरस्मृति (१८), शबरी (९, २०२), शमीक (१२), शरभ (२०), शरभंग (१२), शाकद्वीप (२४), शाण्डिल्यस्मृति (१८), शातातपस्मृति (१८), शारद (२३), शाल्मलिद्वीप (२४), शिवपुराण (१७), शिवि (११), शील (८), शुकदेव (७, १४, १५), शृंगी (१६), शेष (१०, २००), शोभा (१०४), शौनक (१०), शौनक (१०), शौनकादि ऋषि (१६), श्याम (१४६, १४९), श्यामदास (१४६, १७८), श्रीदामा (२२), श्रीधरस्वामी (४५, ५२), श्रीभट्ट (७६), श्रीरंग (३७, ९४, १७८), श्रीसंत (९८), श्रुतदेव (१०), श्रुतिउदधि (३२), श्रुतिदेव (३२), श्रुतिधाम (३२), श्रुतिप्रज्ञ (३२), श्वेतद्वीप (२६)

[स] संकर्षण (२५), संजय (१२), संवर्तस्मृति (१८), सगर (११), सती (१०), सत्यभामा साध्वी (१०४), सत्यव्रत (११), सदन (९६), सदानन्द (२३, १७८), सदाव्रती महाजन (५१), सनकादि (७, १५), सनातन (८९), सन्तदास (१२५, १९०), सन्तराम (१००), सबीरी (३९), सलूधौ (१५०), सवाई (९७), साक्षीगोपालभक्त (५३), सारी रामदास (३७), सिलपिल्ले भक्ता (५०), सींवा (९६, १३९, १४१), सीता सहचरी (१०४), सीहा (९७), सुखानन्द (३६, ६४), सुग्रीव (९, २०), सुदामा (९), सुधन्वा (११), सुनन्द (८, ९, २१), सुनीति (१०), सुबल (२२), सुबाहु (२२), सुभट्ट (२०), सुभद्र (८), सुमति (१०४), सुमन्त्र (१९), सुरतान (११७), सुरसुरानन्द (३६, ६५), सुरसुरी (३६, ६६), सुराष्ट्र (१९), सुशील (८), सुषेण (८, २०), सूत (१०), सूरज (९८), सूरजदास (३९, ७३), सूरदास मदनमोहन (१२६), सेन (३६, ६३), सोझा (९६), सोठा (१४७), सोती (१६३), सोम (९९), सोमनाथ (९९), सौभरि (१६), स्कन्दपुराण (१७), स्वभूरामदेवाचार्य (९६)

[ह] हंस (५१), हठीनारायण (३९), हनुमान् (९, १४, १५, २०, २५), हयग्रीव (२५), हरि (१०, १३), हरिकेश लटेरा (९८), हरिचेरी (१०४), हरिदास (९१, ९८, ९९, १५१, १५६), हरिदासमिश्र (१०३), हरिनाथ (१०१), हरिनाभ (९६), हरिनाभमिश्र (१४६), हरिनारायण (१४६, १६९), हरिपाल (५३), हरिभू (९९), हरिराम हठीले (८५), हरिरामव्यास (९२), हरिवंश (१७५), हरिवर्षखण्ड (२५), हरिव्यासदेव (७७), हरिश्चन्द्र (११), हरिषाबाई (१७०), हरीदास (१२२, १७९), हर्यानन्द (३५), हारीतस्मृति (१८), हितहरिवंश (९०), हिरण्यखण्ड (२५), हीरा (१०४), हीरामनि (१७०), हृषीकेश (९४), हेमदास (३९), हेमबिदीता (१०५)

[प्रस्तुति—श्रीअंकुरजी नागपाल]

श्रीभक्तमालजीकी आरती

इस धन्य नाभा भारती की, आरती आरति हरै॥
यह भक्त भगवत् की कथा, सब विश्व का मंगल करै॥
नर जाति जब माया विवश, अज्ञान तम में पग गई॥
जन भारती आभा तभी, जग जग गई जगमग भई॥
अज्ञान माया मोह तम की, कालिमा कलई धुली॥
सत्प्रेम समता सत्य सुख शुचि, कंज कलिकायें खिलीं॥
उल्लूक खल कलिमल सकल, उडगन प्रभाहत हो गये॥
तब सब पथिक सुन्दर सुखद, हरिभक्ति पथ को पा गये॥
इस भक्त माला के सकल, हरि भक्तजन दाया करो॥
सच्ची अहिंसा भक्तिमय, विज्ञान दै माया हरो॥

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]
गीताप्रेस, गोरखपुर — २७३००५
फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०; फैक्स : २३३६९९७

भक्त चन्द्रहास